अध्याय–1 : योगशास्त्र का परिचयात्मक अध्ययन

'यूज' धातु से योग शब्द बनता है । इसका अर्थ जोड़ना, जुड़ जाना, एकत्र, लाना, मिलाना, ऐसा है । योग का मतलब है – ''जुड़ना'', ''संयुक्त'' होना, मिलना आदि । साधक अपने विकारो का त्याग करके अपनी आत्मा के साथ संयुक्त होता है उसे ही योग कहते हैं । यह निज स्वभाव और स्वरूप ही साधक की आत्मा है । बाकी सारे स्वरूप प्रकृतिजन्य है जो अज्ञानवश हमें ज्ञात है । इन सबको त्याग कर जो वास्तविक स्वरूप को जानता है वही योग है और यही कैवल्यावस्था और मोक्ष है । अलग–अलग विधियों से योग किया जाता है और सभी का अन्तिम परिणाम यही है । भिन्नता के आधार पर योग के भी कई नाम है – राजयोग, ज्ञानयोग, कर्मयोग, भक्तियोग, संन्यासयोग, बुद्धियोग, हठयोग, नादयोग, भययोग, बिनयोग, क्रियायोग आदि नाम है । इन सभी का ध्येय आत्मा के साथ अटूट बन्धन रखना है । महर्षि पतंजलि का योग दर्शन इन सबमें सर्वश्रेष्ठ माना गया है । इस में ज्ञानोपलब्धि का सही मार्ग बताया है जो शरीर, दुनिया और मन की स्थिति को स्थिर करके चित्त की वृत्तिओं का निरोध करता है । पतंजलि ने चित्त की वृत्तिओं का निरोध होने को ही योग कहा है । 2500 साल पुराने इस शास्त्र के हठयोग, अष्टांग योग, मंत्र योग, भक्ति योग, ज्ञान योग, कर्मयोग, राजयोग, ऐसे अनेक प्रकार मिलते हैं। सभी का उद्देश्य एक ही है और वह है मानवीय जीवन का परमोत्कर्ष अर्थात् मोक्ष प्राप्ति, कैवल्य प्राप्ति, ईश्वरीय शक्ति का साक्षात्कार, आत्मा व परमात्मा का मिलाप, समाधि। योगाचार्य और ऋषियो ने योग के बारे में बहुत ही विस्तृत जानकारी दी है । जिसमें योग का महत्व दर्शाते हुए योग का मानव जीवन में अटूट स्थान ऋषियों ने किस तरह बनाया है, वह दिया गया होता है । ऐसा माना जाता है कि ऋषियो ने समाधि अवस्था में योग उपासना करके ही आत्म कल्याण और लोक कल्याण के सन्मार्ग को प्राप्त किया है । वेदो में योग का वर्णन कर्म, ज्ञान और उपासना से ही किया गया है। पातंजलयोग दर्शन में योग के साधन का विचार बताया है । सांख्यदर्शन जो कपिलमुनि रचित है उसमें सांख्ययोग की महत्ता दी गई है । कर्मयोग की व्याख्या पूर्व मीमांसा में और ब्रह्मयोग की उत्तर मीमांसा में बतायी गयी है । भक्ति योग प्रधान ग्रन्थ श्रीमद् भगवत् गीता पुराण और रामायण है । श्रीमद् भगवत् गीता के प्रत्येक अध्याय में योग की ही विचारणा मिलती है । इसीलिए एक मात्र योग धर्म ही है जो मनुष्य के लौकिक और पारलौकिक मुक्ति मार्ग और कल्याण का मार्ग

है । इसीलिए जो जीवात्मा को योगाभ्यास का ज्ञान प्राप्त हो तो वह चित्त की एकाग्रता प्राप्त करके जो ज्ञान उत्पन्न होता है उसी ज्ञान द्वारा वह कर्म बंधनो से छूटकर मुक्ति प्राप्त कर सकता है । योगीओं की समझ के अनुसार जीव अपनी स्वाभाविक और अनिवार्य चित्तवृत्ति तथा इच्छा से प्रेरित होकर अपने विचार और शक्ति के अनुसार खुद को सभी स्थानो में, संयमो में , सभी अवस्थाओं में और सब प्रकार के सुख और शांति प्राप्त रहे और उन्नति ही होती रहे । किसी भी प्रकार का दुःख अशांति या अवनति न हो वह हर एक जीव की अपेक्षा रहती है । इसमें जीव की उन्नति का अर्थ बतलाकर पहले जीव को अपने सच्चे लक्ष्य का पता लगाना पड़ता है । इसमें लक्ष्य और साधन का क्रम बताते हुए उपहास की बात और इसका परिणाम बताया है और असली लक्ष्य एक ही है, ऐसा बताते हैं । इनके अनुसार साधन का नाम योग है । यह बताते हुए कहा गया है कि, जो साधन या साधनसामग्री सनातन योग धर्म में न बतलाई गयी है, जिसके कारण नारायण के साथ नर का एक हो जाना बताया गया है उसे ही संस्कृत में योग नाम से जाना जाता है ।

ऋषियों का मानना है कि योग शास्त्र को जानने से पहले योग कहा से आया, उसकी उत्पत्ति कहाँ से हुई , कितनी सदियों से चला आ रहा है, योग का अर्थ क्या है , ये सब जानना जरूरी है । योग को जानने से पहले दर्शन को जानना पडेगा और दर्शन क्या है , वह हमें वेदों से पता चलेगा । वेद का मतलब है जानना । प्राचीन भारत का रहस्य ज्ञान जिसमें संग्रहित है, ऐसे ग्रंथ को वेद कहते हैं । ऋषियों ने हमारे प्राचीन वेदों में भारतीय धर्म के मूल बताए है । पूरा हिन्दु धर्म वेद में से ही निष्पन्न हुआ है। वेद में ज्ञान का संचय है । वेद में अध्यात्म और धर्म का ज्ञान है । यहाँ पर धर्म यानि सारे वेद वैदिक धर्म का मूल है । धर्म को चार भागों में बाँटा गया है – अध्यात्म, नीति , दर्शन, क्रियाकांड। इन चारों में जो तत्वयुक्त धर्म है, उसीका ज्ञान वेदों में संग्रहित है। वेद अपौरूषेय है। कोई व्यक्ति की रचना नहीं है । इसीलिए वेदों को अपौरूषेय कहा गया है। इसलिए ये सनातन है। वेद के ऋषि वेदों के कर्ताया रचना करने वाले नहीं , लेकिन वेदों के दृष्टा कहलाते हैं । उन्हीं ने वेदों के ज्ञान का दर्शन किया है । इसलिए उन्हें दृष्टा कहते हैं। वेदों के शब्दों को भी उन्होंने अपनी बुद्धि से नहीं लिखे बल्कि ज्ञान के साथ ही शब्दों का भी दर्शन किया है । वेद अपौरूषेय ज्ञान होने के कारण वह स्वतः प्रमाण है । योग में प्रत्यक्ष, अनुमान और आगम ऐसे तीन प्रकार के प्रमाणों के बारे में कहा गया है जिसमें वेदों को आगम–प्रमाण कहा गया है । वेदों को श्रृति ग्रंथ भी कहते हैं । चार वेदों को

मिलाकर वैदिक संहिताओं के कुल 2038 मंत्रो के स्वरूप चार भागों में बाँटे है । ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद ।

ऋग्वेद : ऋग्वेद में ''ऋक्'' का मतलब प्रकाश या ज्ञान ऐसा होता है । ऋग्वेद मूल वेद है । इसमें देवताओं की प्रार्थनाएँ और स्तुतिओं का संग्रह किया गया है । यह सबसे प्राचीन वेद है । इसके 10 मंडल यानि के विभाग है । दश मंडल मिलकर कुल 1028 सूक्त (मंत्रों का संग्रह) है । हर एक सूक्त के अपने देवता, ऋषि और छंद होते हैं । ऋग्वेद में मंत्रों को ऋचा कहते हैं । ऋग्वेद में कुल 10552 मंत्र है । ऋग्वेद के विषेषज्ञो को होता कहते हैं । इसकी दो शाखाएँ है – शुक्ल और बाष्कल । ,

यजुर्वेद : यजुर्वेद में यजन धातु पर से आया हुआ शब्द है । जिसका मतलब यज्ञ होता है । इसलिए यजुर्वेद नाम दिया है । इसमें देवताओं के यज्ञ ने संबंध में कहा गया है । वैशंपायन ऋषि यजुर्वेद की परंपरा के मुख्य प्रवर्तक है । यजुर्वेद की दो शाखाएँ है । कृष्ण यजुर्वेद–याज्ञवल्क्य ऋषि , शुक्ल यजुर्वेद – याज्ञवल्क्य ऋषि । यजुर्वेद के मंत्रों को ''यजु'' कहते हैं । यजुर्वेद के विशेषज्ञों के ऋत्विज को अध्यर्यु कहते हैं । नित्य होम, अग्नि होम, ऋतुओं के हिसाब से किए जाने वाले होम, चतुर्मास यज्ञ की प्रक्रियाओं का वर्णन इसमें दिया गया है । सोम यज्ञ, राजसूय यज्ञ, वाजपेय यज्ञ आदि की प्रक्रियाओं का वर्णन किया गया है । चारों वेदों में से यजुर्वेद सबसे छोटा वेद है । जिसमें कुल 40 अध्याय है । अंतिम 40 वें अध्याय को ईशावास्योपनिषद से पहचाना जाता है ।

सामवेद : ऋग्वेद के मंत्रों का छोटा स्वरूप यानि सामवेद । भारतीय संगीत का उद्भव सामगान में से ही हुआ है । प्राचीन काल में यज्ञ के समय सामगान करने की प्रथा थी । सामगान करने वाले ऋत्विज को उद्गाता कहते हैं । सामवेद में कुल 1875 ऋचाएँ है उसमें से 80 प्रतिशत ऋग्वेद में से ली गयी है । सामवेद के दो भाग है – पूर्वार्यिक , उत्तरार्यिक।

अथर्ववेद : अथर्ववेद विशिष्ट प्रकार के प्रयोगों का संग्रह है । इसमें जादु ,अभिचार, कामण और वशीकरण के मंत्र है । आयुर्वेद भी अथर्ववेद के अंर्तगत आता है । अथर्ववेद के दो भाग है अथर्व और अंगिरस । पहले भाग में सौम्य प्रयोग और दूसरे भाग में उग्र प्रयोग दिए गए हैं । दोनों को मिलाकर अथर्वांगिरस कहा गया है । उसका ही दूसरा नाम अथर्ववेद है । अथर्ववेद के विशेषज्ञ किसी ऋत्विज को ब्रह्मा कहते हैं । यज्ञ को बिना जिसके पूरा हो यह देखने का काम ब्रह्मा का

होता है । यज्ञ के ऋत्विजों में ब्रह्मा का स्थान विशिष्ट है । अथर्ववेद की नौ शााखायें थी लेकिन अभी सिर्फ पिय्यलाद शाखा ही देखने को मिलती है । अथर्ववेद में 20 कांड, 730 सूक्त और 5977 मंत्र है ।

वेद : **वेदों** के तीन विभाग है ब्राह्मण, आरण्यक और उपनिषद। ब्राह्मण में वेद के मंत्रों को ''ब्रह्म'' कहते हैं । इसीलिए मंत्र के रूप में जो लिखा गया उसे ब्राह्मण कहा गया । ब्राह्मण ग्रंथ को कर्मकांड कहते हैं । उसमें कर्मकांड और यज्ञों का वर्णन है । ब्राह्मण भाग में वेदमंत्रों का अर्थ अलग–अलग तरीके से दिये गए हैं । इस ब्राह्मण ग्रंथ में नैतिक आदेशों और धार्मिक कर्तव्यों का वर्णन दिया गया है । आरण्यक में ब्राह्मण ग्रंथ को अंतिम और सारांश रूप भाग को आरण्यक कहते हैं । आरण्यक यानी जंगल में हुए धर्म के संबंध में जो चिंतन और रहस्य संग्रहित हुए है उसे ही आरण्यक कहा गया है । इसमें उपासना कांड का चिंतन देखने को मिलता है । ब्राह्मण ग्रंथ और उपनिषद् को जोड़ती कड़ी को आरण्यक ग्रन्थ कहा गया है । उपनिषद में उपनिषद का अर्थ है आध्यात्मिक ज्ञान । सत् का ऐसा ज्ञान जो मुक्ति दिलाता है । इसमें जीवात्मा और परमात्मा के स्वरूप के संबंध में विचार दिए गए हैं । आरण्यक ग्रंथ के अंतिम और सारांशरूप भाग को उपनिषद् कहते हैं । इसमें ज्ञान कांड की उपासना है । उप निषद का विषय है आत्मतत्व या आत्मविद्या का प्रतिनिधित्व करना । उपनिषदों की संख्या बहुत बड़ी है , लेकिन इसमें महत्व के दश उपनिषद् है । वेदों के अंतिम भाग या सूक्ष्म तत्व चिंतन को तत्व ज्ञान का जो भाग है उसे उपनिषदों के नाम से जाना जाता है । ''कस्मिन्नु भगवो विज्ञाते सर्वमिंदु विज्ञातं भवतीति'' । जो जानने से बाकी का सब समझ में आ जाए उसे उपनिषद् कहा गया है । उपनिषद् यानी उप–पास नि–निःशेष षद्–बैठना। उपनिषद् का अर्थ है –जो ज्ञान या विद्या को जिज्ञासु शिष्य गुरू या आचार्य के पास बैठकर समीप या सांनिध्य को निकटता द्वारा प्राप्त करे ऐसे ज्ञान या विद्या को उपनिषद् कहते हैं । उपनिषद् का दूसरा अर्थ ''परमात्मा को प्राप्त कराने वाली विद्या'' ऐसा भी होता है । अज्ञान का नाश करके परमात्मा को भेजने वाली विद्या, जिसमें वेदों का सच्चा रहस्य है उसे उपनिषद् कहते हैं । उपनिषद् गीतारूपी अमृत स्वरूप दूध देनेवाली गाय को कहा गया है । गीता में जो विशिष्ट आध्यात्मिक ज्ञान है उसका स्त्रोत उपनिषद् है । उपनिषदों की संख्या 108 है, जिसमें से 10 उपनिषद् प्रधान है । ईश , केन , कठ , प्रश्न, मंडुका, मांडूक्य, तैत्तिरीय, अैतरेय, छांदोग्य , बृहदारण्यक । इस तरीके से ऋग्वेद का एक यजुर्वेद के पांच सामवेद के दो और अर्थववेद के तीन उपनिषद्

है । शुक्ल यजुर्वेद के आखरी चालीसवें अध्याय को ईशोपनिषद् कहते हैं । उपनिषद् वेदों के अंतिम भाग है । इसीलिए उसे वेदांत भी कहते हैं। उपनिषदों का अर्थ समझने के लिए भगवान व्यास के लिखे हुए सूत्रों, जिसें वेदांतसूत्र या ब्रह्मसूत्र कहते हैं। वेद को श्रृति कहते हैं और श्रृति के आधार पर लिखे हुए ग्रंथों को स्मृति कहते हैं । उपनिषदों के विषय के हिसाब से भग कहे जाए तो चार विभाग हो सकते हैं – ज्ञान, योग, वैराग्य (सन्यास) , भक्ति (शिव और विष्णु की अलग–अलग नाम से महिमा) । इन सबमें सबसे प्राचीन उपनिषद् ज्ञान के बारे में बताते हैं ।

1.1 दर्शन शब्द का अर्थ 'दर्शन' दर्श = देखना इस धातु में से बना हुआ शब्द है । दर्शन शब्द का अर्थ नेत्रों द्वारा मिला हुआ ज्ञान ऐसा होता है । दूसरे सभी इन्द्रियों में से नेत्र इन्द्रिय विषय को अधिकतम समझ सकती है और देखने वाले को अपने मार्ग में स्थिर रखती है । गिरने से बचाती है । इसलिए दूसरी इन्द्रियों की तुलना में नेत्र इन्द्रियों का स्थान सत्य और समत्व के सबसे नजदीक है । इसलिए दूसरी इन्द्रियों के ज्ञान से ज्यादा नेत्रेन्द्रियों का ज्ञान दर्शन अधिक है । सामान्य जीवन में ''दर्शन'' शब्द का अर्थ आध्यात्म ज्ञान के अर्थ में उपयोग होता है । इसलिए अतीन्द्रिय वस्तुओं का साक्षात्कार ऐसा दर्शन का अर्थ हुआ । अर्थात् आत्मा, परमात्मा जैसे इन्द्रयातीत वस्तुओं का विशद् असंदिग्ध दृढ ज्ञान ही दर्शन है । दर्शन ज्ञान विशुद्धि की पराकाष्ठा है । दर्शन का विषय तत्व है । ''तत्व'' के अनेक अर्थ है, लेकिन उसमें दो मुख्य है । तत्व यानि ब्रह्म (मूल कारण) है और तत्व यानि वस्तु का यथार्थ स्वरूप । जगत (दुनिया) का मूल कारण क्या है उसके चिंतन में से दर्शन का प्रमेयभास और वस्तु का यथार्थ स्वरूप किस तरीके से जान सकते हैं उसके चिंतन में से दर्शन का प्रमाण भाग फलित होता है ।

1. 2 दर्शन शास्त्र की उत्पत्ति का इतिहास

विश्व के विविध दर्शनो और ज्ञान प्रक्रियों के विविध प्रेरकबल है । यही प्रेरकबल भारतीय दर्शनशास्त्र के विकास को लागू होता है । ये प्रेरकबल इस प्रकार है –

आश्चर्य : प्रकृति में बिगड़ती अलग–अलग घटनाएँ और पदार्थो जैसे की प्रकृति, सूर्य, पर्वतमाला, तारे आदि प्रत्येक के अवयव को समझने वाली प्रक्रिया में से सौंदर्यशास्त्र की उत्पत्ति हुई है ।

भय : अग्नि, वर्षा, पवन का तांडव आदि प्रकृति की घटनाओं से भय उत्पन्न होता है और उसमें से धर्म की उत्पत्ति हुई ।

शंका : मृच्छा, कार्य और कारण को समझने का प्रयास, ये स्त्व क्या है, किसके लिए है , यही प्रेरकबल विज्ञान की उत्पत्ति और विकास में कारण रहे हैं तत्कालीन उपयोग वो मांग पर आधारित है ।

आध्यात्मिक, असंतोष या प्रतिष्ठितता : विशाल, वृहद्, अनंत, आमया जीवन को जानने और समझने की भूख में कौन हूँ , कहाँ से आया हूँ , मेरे यहाँ आने का उददेश्य क्या है , जीवन क्या है , मुझे कहाँ जाना है , इस आध्यात्मिक चिंता में से दर्शन शास्त्र का उद्भव हुआ है। धर्म और आध्यात्म शास्त्रों की उत्पत्ति को क्रम से देखे तो प्रकृति को जीवनबल मानके उसे देवस्वरूप माना गया है । पहले वायु, अग्नि, जल, सूर्य आदि प्रकृति के विविध तत्वों को रहस्यमय अलौकिक शक्तियों की कल्पना से उन सबको देवस्वरूप माना गया । उसमें से बहुतत्ववाद का जन्म हुआ । बहुत सारे चिंतन के अंत में उसमें से बहुईश्वरवाद का उद्भव हुआ । बहुईश्वरवाद में से सृष्टि का सर्जन करने वाले उसका पालन और नियमन करने वाले केवल एक ही ईश्वर के अस्तित्व को स्वीकार किया गया । यह आध्यात्मिक विचार के विकास के अंत में निर्गुण, निराकार परमात्मा तत्व के अस्तित्व का विकास हुआ ।

योगीओं का मानना है कि दर्शन छः है । जिसे षड्दर्शन कहते हैं । लेकिन दर्शन की संख्या के बारे में या उनके नामों के बारे में विद्वानों का एक मत नहीं है । नीचे दिए गये उन्नीस 19 दर्शन मुख्य है । थेरवाद, सर्वास्तिवाद (वैमाषिक), सौत्रान्तिकवाद, शून्यवाद, योगाचार (विज्ञानवाद), बौन्दन्यायवाद, एवं सांख्य योग , एवं न्याय वैशेषिध, पूर्व मीमांसा । वेदान्त के पांच सम्प्रदाय है – शंकर का अद्वैतवाद, रामानुज का विशिष्ट अद्वैतवाद , निम्बार्क का द्वैताद्वैतवाद, माधव का द्वैतवाद, वल्लभ का शूद्र अद्वैतवाद , काश्मीरी शिव दर्शन । दर्शन को दो विभागों में बाँटा गया है । जिसको आस्तिक दर्शन और नास्तिक दर्शन कहते हैं । आस्तिक दर्शन : सांख्य , योग ,न्याय, वैशेषिक, पूर्व मीमांसा, उत्तर मीमांसा (वेदांत दर्शन) । नास्तिक दर्शन : चार्वाक , जैन, बौद्ध । वैसे तो आस्तिक का अर्थ ईश्वर में जो विश्वास रखता है । ऐसा माना गया है मगर यहाँ पर ''आस्तिक'' और ''नास्तिक'' का अर्थ अलग लिया गया है । क्योंकि जो दर्शन आस्तिक माने गए हैं उसमें दर्शनों में से पूर्व मीमांसा और सांख्य निरीश्वरवादी है । योग न्याय और वैशेषिक ईश्वर को मानते तो है लेकिन उनकी दार्शनिक प्रक्रिया में ईश्वर के लिए कोई स्थान नहीं है । इस दर्शनों में सिर्फ नाम के लिए ही ईश्वर को स्थान दिया है । इसलिए ईश्वर को मानने और न मानने की दृष्टि से दर्शनों को

आस्तिक–नास्तिक नहीं माना गया । वैदिक सम्प्रदाय के लोगो ने ''आस्तिक'' का अर्थ वेद को स्वीकारने वाले और नास्तिक का अर्थ वेदों को नहीं स्वीकारने वाले ऐसा मानते हैं । पाणिनी के व्याकरण के अनुसार ''आस्तिक'' शब्द का अर्थ परलोक में मानने वाले और ''नास्तिक'' शब्द का अर्थ परलोक में मानने वाले । इसी दृष्टि से चार्वाक के अलावा सभी दर्शन आस्तिक दर्शन हो जाते हैं ।

षड्दर्शन : षड्दर्शनों दर्शनो को इस प्रकार पहचाना जाता है –दर्शन –प्रणेता ,सांख्य–कपिल, योग – पतंजलि, न्याय –गौतम, वैशेषिक – कणात, पूर्व मीमांसा – जैमिनी, उत्तर मीमांशा – बाद्रायण व्यास । (वेदान्त दर्शन)

सांख्य दर्शन : सांख्य दर्शन को अति प्राचीन दर्शन माना गया है । ''सांख्य'' शब्द का अर्थ महर्षि कपिल के द्वारा लिखे हुए दर्शन को सांख्य दर्शन के नाम से जाना जाता है । ''संख्य'' शब्द में से ''सांख्य'' शब्द की निष्पत्ति हुई है । यह ''संख्या'' शब्द के दो अर्थ निकाले गए हैं । ''संख्या'' का अर्थ गिनती करना यह है । वह विश्व के अलग–अलग तत्वों की संख्या को गिनने के काम को सांख्य कहते हैं । संख्या शब्द सम् (क्रमपूर्वक) ख्याज् (यह ख्या कथन) धातु से बना हुआ है । यह सांख्य शब्द का अर्थ ज्ञान होता है । पुरूष, प्रकृति तथा इन दोनों के बीच के भेद को जो यथार्थ ज्ञान वही सांख्य और उस ज्ञान का उपयोग दिखलाने वाले शास्त्र को सांख्य शास्त्र कहते हैं । गीता में सांख्य शब्द का अर्थ तत्वज्ञान या आत्मबोध ऐसा दिया गया है । गीता में कहा गया है कि ''इस जगत् में दो मार्ग चलते हैं, एक सांख्य का ज्ञानयोग और दूसरा कर्मयोग–योगीक्षिका ।'' महाभारत अनुसार सही विवेक वाले आत्म कथन को सांख्य कहते हैं । सांख्य दर्शन सिर्फ दो ही तत्वों को मानता है – प्रकृति और पुरूष । प्रकृति प्रतिक्षण परिणामी है और पुरूष नित्य अपरिणामी है । पुरूष एक नहीं है वो असंख्य है । प्रकृति दुनिया का उपादान कारण है । उसमें से दुनिया के विविध तत्वों का उभार होता है ।

सांख्य दर्शन का स्वरूप ''सांख्य दर्शन'' यथार्थवादी द्वैतवादी और बहुत्ववादी दर्शन है । वो पुरूषों का स्वीकार करती है और इसी अर्थ में वास्तववादी (यथार्थवादी) है । एक–दूसरे से एकदम भिन्न, पूर्ण स्वतंत्र। उसे दो सत् तत्व पुरूष और प्रकृति का तो स्वीकार करते हैं ।

इसी अर्थ में वो द्वैतवादी है और बहुत्ववादी । इस अर्थ में है कि अनेक पुरूष तत्वों को स्वीकार करती है ।

1.3 सांख्य का सत्कार्यवाद :

सांख्याचार्यो का मानना है कि सतः सत् जायते । अर्थात् सत् में से ही सत् का जन्म होता है । अस्तित्व धारण की हुई चीजों में से अस्तित्व धारण की हुई चीजें ही उत्पन्न होती है । खुद की उत्पत्ति से पहले कार्य का अस्तित्व कारण में होता है । दूसरे शब्दो में कारण खुद के कार्य की अव्यक्त अवस्था है । सांख्य के मतानुसार कार्य कारण के अंदर पहले से ही रहता है । इसीको सांख्य सत्कार्यवाद कहते हैं । कोई भी वस्तु असत् या शून्य में से नई उत्पन्न नहीं होती । जैसे की सोना तो सोने के आभूषणों का उपादान कारण है । या मिट्टी वो घड़े का उपादान कारण है । कार्य नित्य है और भूत, भविष्य और वर्तमान उसकी अलग–अलग अवस्थाएँ है । जैसे की सोने का कड़ा पहले मूल धातु सोने में समाया हुआ था फिर कार्य (परिणाम) स्वरूप वो बाहय दिखायी नहीं देता । परंतु वर्तमान स्थिति में धातु के रूप में उसकी मात्र अभिव्यक्ति ही होती है और समय बितने से वो फिर से मूल कारण में विलीन हो जाएगा । इसलिए सांख्याचार्यो के मतानुसार कार्य तो कारण का परिणाम है । वो कोई बिल्कुल नया सर्जन, उत्पत्ति या आरंभ नहीं है । सांख्याचार्यो के विचार से उत्पत्ति और विनाश का अर्थ सिर्फ आविर्भाव और निराभाव ही है ।

सांख्यके सत्कार्यवाद को सिद्ध करने के लिए दी गयी दलील है – खुद की उत्पत्ति पूर्व कार्य खूद के कारण में शक्तिरूप से विद्यमान न हो तो उसको कोई उत्पन्न नहीं कर सकता । जैसे की तील में अगर तेल ही न हो तो उसको कितना भी पीस लो मगर उसमें से तेल नहीं निकलेगा । इसको असत्करणात् कहते हैं । हमारा अनुभव कहता है कि कई कारणों में से ही कार्य की उत्पत्ति होती है । इसलिए कारण और कार्य के बीच में कोई ठोस संबंध है । दूध में से दहीं बनता है, तंतु में से कपड़ा बनता है । उसी तरह जगत् रूपी कार्य उसके कारण के साथ गहरा संबंध रखता है । इसलिए ये सत् है । घड़ा बनाने के लिए कुंभार माटी का उपयोग करता है, दूध का नहीं । इसे उपादानग्रहणात् कहते हैं । कार्य और कारण के बीच में कोई भी संबंध ना हो तो कोई भी चीज कोई भी वस्तु में से बना सकते है । ऐसे ही गुठली में से आम का पेड़ ही नहीं मगर पीपल का पेड, नीम का पेड़ आदि सभी उत्पन्न हो सकता था । लेकिन दुनिया में ऐसी कोई भी व्यवस्था नहीं है । इसको सर्वसंभवाभावात् कहते हैं । जो कारण में

कार्य को उत्पन्न करने की शक्ति होती है वही कारण कार्य को उत्पन्न करता है । इसको शक्तस्य शक्यकरणात् कहते हैं ।

सत्कार्यवाद के दो रूप है –परिणामवाद, विवर्तवाद । परिणामवाद यानी की कोई भी वस्तु सही में बदल जाती है और उस वस्तु का रूप धारण करे तब उसे विकार अथवा परिणाम कहते हैं । आगे के रूप को छोड़कर दूसरा रूप धारण करना उसको परिणाम कहते हैं । उदाहरण स्वरूप दहीं वो दूध का परिणाम (विकार) है । विवर्तवाद यानी कोई भी वस्तु सही में बदलती नहीं है और अलग रूप धारण होती हुई दिखें तब उसको विवर्त कहते हैं। उदाहरण :चांदनी रात में सागर के किनारे चांदनी रात में छीप कर चांदी के रूप में दिखना।

तत्व परिचय : सांख्य दर्शन पच्चीस तत्वों को स्वीकार करता है । जड़ जगत् को भूल तत्व चौबीस है । उसमें से भिन्न आत्म तत्व एक है । उसको मिलाकर 25 तत्व है । प्रकृति, महत , अहंकार, पांच ज्ञानेन्द्रिय : चक्षु, श्राति, घ्राणे, रसना, स्पर्शनेन्द्रिय , पांच कर्मेन्द्रिय – वाक, हाथ, पग, गुदा, जननेन्द्रिय, मन , पांच तन्मात्रा– शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध, पांच महाभूत– आकाश, वायु, तेज, पाणी, पृथ्वी , पुरूष । प्रकृति : प्रकृति वो ही मूल प्रकृति या प्रधान कहते हैं । क्योंकि जड़ जगत् व मूल उपादान कारण प्रकृति ही है । उसका खूद का कोई कारण नहीं है । प्रकृति सत्व, रसज और तमस् ऐसे तीन गुण वाली होती है । इसलिए 'त्रिगुणात्मिका' कहते हैं । वह संपूर्ण, अनात्म और जड़ है । इसलिए उसे जडात्मिका कहते हैं । वह विश्व के आदि मूलभूत कारण है । इसलिए उस ''भूला'' या ''परा'' प्रकृति भी कहते हैं । पूरे जगत् के सभी पदार्थो में वो व्यक्त है, लेकिन वो स्वयं ''अव्यक्त'' है । क्योंकि वह किसी भी कारण का कार्यरूप नहीं है । सभी पदार्थो का मूल और मुख्य कारण होता है उसे 'प्रधान' भी कहते हैं । वह सूक्ष्म–अतिसूक्ष्म होता है मगर इन्द्रिय गोचर नहीं है । लेकिन उसे अनुमान से जाना जाता है । वो बहुत शक्तिशाली है । वह नित्य और परिणामी है ।

प्रकृति के तीन गुण : प्रकृति में सत्व, रजस् तथा तमस् यह तीन गुण समान अवस्था में होते हैं । यह तीन गुण रस्सी जैसे होते हैं जो तीन तारों से बनी होती है । जो कभी अलग–अलग नहीं होती । वो तीन तारे मिलकर रस्सी बनती है । वो तारें जो अलग हो तो रस्सी नहीं बनती । वैसे ही प्रकृति यानि तीन गुण । गुण यानि प्रकृति की गुणवत्ता नहीं लेकिन द्रव्य है । प्रकृति स्वयं त्रिगुण है । यह तीन मूल द्रव्य ही प्रकृति के उपादान तत्व है । गुण सूक्ष्म और अतीनिय

है । गुणें का अस्तित्व उसके खद के लिए नहीं है परंतु पुरूष के लिए होता है । यह तीनों गुण पुरूष को बाँधते है और पुरूष को गौण रूप से सहाय करते हैं । गुणों के कार्य और उसके प्रभाव द्वारा उसका अनुमान होता है । गुण यानि सुख, दुःख और मोह को जगाने वाला होता है ।

गुणों का स्वरूप : यह सारे गुण एक–दूसरे के विरोधी है । सत्व गुण : यह लघु , प्रकाशशील और द्रष्ट है । ज्ञान, प्रकाश, आनंद आदि उसके मनो व्यापार है । वहीं उसका कारण है । उसका रंग सफेद है । मानमर्दन उर्ध्वगति का द्योतक है । रजोगुण : वह प्रेरक और चल है । प्रवृत्ति, रागद्वेष, लोभ, काम आदि रजस् गुण को आभारी है । उसका रंग लाल है । तमोगुण : वह गुरू और आवरण रूप है । गुरूत्व अधोगति का द्योतक है । मोह, आलस, जड़ता, प्रमाद, निद्रा इत्यादि तमस् का कार्य है । उसका रंग काला है । जैसे दिये में तेल, रूई आदि प्रकाशहीन चीजों में से प्रकाश बनता है । इसी तरह पुरूष के प्रयोजन के लिए यह गुणों की वृत्ति है । प्रकृति यानि तीनों गुणों की साम्यावस्था ।

पुरूष : सांख्य दर्शन द्वैतवादी है उसमें एक तत्व प्रकृति है और दूसरा पुरूष या आत्मा है । पुरूष का अस्तित्व स्वयं सिद्ध, स्वयं प्रकाश है । क्योंकि सभी को ''मैं'', ''मेरा'' उसका ज्ञान होता ही है । उसके लिए किसी प्रमाण की आवश्यकता नहीं है । वह शुद्ध चैतन्य स्वरूप सर्वव्यापी है । वह उदासीन, अ–कर्ता, केवल, मध्यस्थ, साक्षी, दृष्टा और ज्ञाता है । वह नित्य और अपरिणामी है । पुरूष न तो शरीर है । न तो मन है । न अहंकार है । न बुद्धि है । चैतन्य उसका गुण नहीं है । क्योंकि वह स्वयं चैतन्य रूप है । वह अविकारी, असंग है । वह सुख–दु :ख आदि से परे है । चैतन्य स्वरूप वाली आत्मा विषयी है और जड़ स्वरूप वाली बुद्धि, इन्द्रिय, देह आदि वह विषयी (पुरूष) के विषय है ।

पुरूष बहुत्ववाद (अनेकात्मवाद) : सांख्य के अनुसार प्रकृति एक ही है । परंतु पुरूष अनेक है । वेदान्त के अनुसार आत्मा एक है और वह सभी जीवो में व्याप्त है । लेकिन सांख्य के अनुसार प्रत्येक जीव की आत्मा या पुरूष भिन्न–भिन्न है । संसार में अनेक पुरूष और आत्माएँ है । पुरूष और प्रकृति में यह समानता है कि वो दोनों मूल तत्व है । परस्पर स्वतंत्र है और स्व–आधारित है । दोनों अ–हेतुमय और कारण रहित है । दोनों किसी की भी विकृति नहीं है

। पुरूष और प्रकृति दोनों नित्य, अनादि और अविनाशी तत्व है । स
ृष्टि का विकासक्रम : सांख्य के अनुसार पुरूष और प्रकृति के संयोग से विश्व का निर्माण होता है । प्रकृति का स्वभाव जड़ है । इसलिए सृष्टि के सर्जन के लिए पुरूष और प्रकृति दोनों का संयोग होना जरूरी है । पुरूष का प्रकृति के साथ संयोग प्रकृति का नाटक देखने के लिए है । प्रकृति का पुरूष के साथ संयोग पुरूष का कैवल्य (मोक्ष) के लिए है । यदि संयोग से सृष्टि उत्पन्न होती है ।

प्रलय (तिरोभाव) की अवस्था में प्रकृति में तीनों गुण एक समान रहते हैं । प्रकृति के साथ पुरूष के संयोग से गुणों की यह साम्यावस्था में विक्षेप होता है और परिणाम स्वरूप सृष्टि का विकासक्रम शुरू होता है । प्रकृति और पुरूष के संयोग के साथ ही विविध पदार्थो का क्रमानुसार अविर्भाव होता है । सांख्य दर्शन में पुरूष के साथ–साथ कुल 25 तत्वों को माना गया है ।

सबसे पहले 'महत् तत्व' का प्रादुर्भाव होता है । बाहरी दुनिया की दृष्टि से वह विराट बीज स्वरूप है । प्रकृति का वह सर्वप्रथम विकार है । उसे निश्चय करने ''धर्मवाली बुद्धि'' नाम दिया गया है । धर्म, ज्ञान, वैराग्य और ऐश्वर्य यह चार जिसके सात्विक गुण हो उसे ''महत्'' नाम दिया गया है । बुद्धि स्वयं प्रकृति का कार्य यानि परिणाम है जो जड़ है लेकिन पुरूष के अधिक सानिध्य में आने के कारण चैतन्य का उस पर प्रतिबिंब पड़ता है । इसलिए वह चेतन के समान प्रतित होती है । तमस् का प्रमाण बढने से बुद्धि में अधर्म, अज्ञान, अशक्ति और आसक्ति का उद्‌भव होता है । इन्द्रिय और मन का व्यापार बुद्धि से है और बुद्धि का व्यापार पुरूष से होता है । बुद्धि द्वारा ही सुख–दुःख का प्रथम अनुभव व्यक्ति को होता है। पुरूष या आत्मा सब भौतिक द्रव्यों और गुणों से ऊपर होकर बुद्धि से भिन्न है । बुद्धि की मदद से पुरूष का प्रकृति से खुद का भेद परखता है और खुद का यथार्थ स्वरूप समझने का प्रयत्न करता है ।

सांख्य के अनुसार सृष्टि का विकास क्रम कुछ इस तरह दिया है :

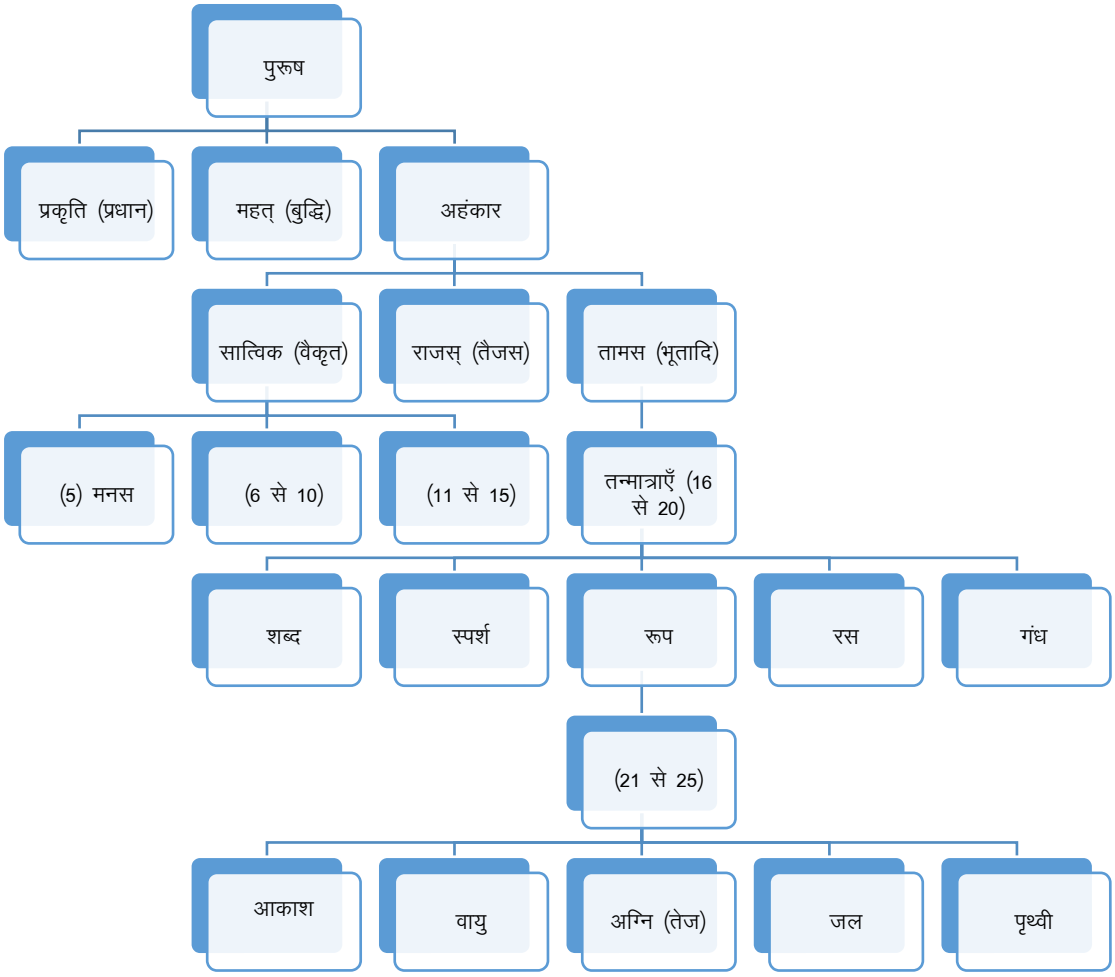

पांच महाभूत, पांच कर्मेन्द्रिय, पांच ज्ञानेन्द्रिय और मन यह सोलह विशेष लिंग है । पांच तन्मात्रा और अहंकार यह छः अविशेष लिंग है । महत् तव लिंग मात्र है । तीनों गुणों की साम्यावस्थारूप प्रकृति को अलिंग कहते हैं । आकाश की उत्पत्ति शब्द तन्मात्रा से हुई है यानि शब्द वह आकाश का गुण है । वायु की उत्पत्ति शब्द और स्पर्श में से हुई है । यानि वायु का गुण शब्द और स्पर्श है । अग्नि की उत्पत्ति स्पर्श और रूप मात्राओं में से हुई है । अग्नि का गुण शब्द, स्पर्श और रूप है । ब्रह्म की उत्पत्ति शब्द, स्पर्श, रूप और रस में से हुई है । जल का गुण शब्द, स्पर्श, रूप और रस है । पृथ्वी की उत्पत्ति शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गंध यह सभी तन्मात्राओं में से हुई है और वही उसका गुण है ।

1.4 सांख्य और योग :

सांख्य और योग एक–दूसरे के पूरक है । सांख्य और योग मिलकर एक शास्त्र बनता है । सांख्य कलात्मक है और योग व्यावहारिक है । सांख्य सिद्धांतों का व्यावहारिक जीवन में प्रयोग ही योग का उद्‌देश्य है । सांख्यशास्त्र में ईश्वर के उल्लेख नहीं है । इसलिए उसे ''निरीश्वर सांख्य'' कहते हैं । लेकिन पतंजलि के योग में 26 वे तत्व को ईश्वर स्वीकारा गया है । इसलिए ''सेश्वर सांख्य''(स + ईश्वर = ईश्वर तत्व वाला) कहते हैं । सांख्य के अनुसार ज्ञान ही मुक्ति का एकमात्र मार्ग है । मोक्षप्राप्ति के लिए प्रकृति और पुरूष का यथार्थ ज्ञान होना जरूरी है । लेकिन योगशास्त्र के अनुसार चित्त की उच्छ्रंगल वृत्ति ही अविवेक का कारण है और इसलिए चित्तवृत्तिओं का निरोध करना जरूरी है ऐसा पतंजलि ने कहा है ।

यह चित्तवृत्ति निरोध सिद्ध करने के लिए अष्टांग योग एक साधन है । चित्त और चित्तवृत्ति निरोध का उल्लेख सांख्य में नहीं है । योग साधना के बिना सांख्यात्मक तत्वों का ज्ञान योग साधना के बिना सांख्योक्त तत्वों का ज्ञान विवेक ज्ञान, आत्यांतिक दुःख मुक्ति आदि मुमकीन नहीं है इसलिए सांख्य सिर्फ सिद्धांत है जबकि योग यह सबके लिए एक साधना या साधन है । इसलिए सांख्य और योग एक ही शास्त्र के दो भाग है ।

ऋषियो का मानना है कि योग व्यायाम पद्धति नहीं है । शारीरिक स्वास्थ्य यौगिक विद्याओं का ध्येय नहीं है । ऋषियो के मंतव्य से शारीरिक स्वास्थ्य की दृष्टि से यौगिक क्रियाओं का अभ्यास करने वाले और आध्यात्मिक विकास के लिए योगाभ्यास करने वालों का लक्ष्य, पद्धति और अभ्यास के स्वरूप भिन्न–भिन्न रहते हैं । योग चिकित्सा पद्धति नहीं है । योग असाधारण शारीरिक कौवत प्राप्त करने वाली पद्धति नहीं है । योग सिद्धिओ की प्राप्ति के लिए नहीं है । योग सिर्फ कोई एक विशिष्ट व्यक्ति के लिए नहीं है । योग विज्ञान है । योग सिर्फ तत्वज्ञान नहीं है । भाणदेव के अनुसार योग का मतलब है परम सत्य की प्राप्ति के लिए किए जाने वाली साधन पद्धति है । योग यानि आध्यात्म का विज्ञान । प्राचीन शास्त्रों में योग की कई सारी व्याख्याओ का वर्णन किया गया है । जैसे की योगः कर्मसु कौशलम् (भगवद् गीता) योग यानि कर्मो में कुशलता । समत्वं योग उच्चते (भगवद् गीता) समत्व को योग कहते हैं । चित्त के समतापूर्ण अवस्था को यहाँ पर योग कहा गया है । वृत्तिओं में से मुक्ति को अवस्था का ही सही अर्थ में समत्व कहा गया है । दुःख, संयोग–वियोग योग संज्ञितम् (भगवद् गीता) दुःख के साथ के संयोग में से मुक्ति को योग कहा गया है । योगः संनहनोपायः ध्यानं संगति युक्तिषुं । यो ग शब्द का अर्थ तैयारी, उपाय, ध्यान, संगति और युक्ति के अर्थ में होता है । इस व्याख्या के

अनुसार आध्यात्मिक विकास के लिए शरीर, प्राण, मन और बुद्धि से जो भी कुछ किया जाता है उसे योग कहते हैं ।

योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः (1–2 योगसूत्र)

योग यानि चित्त की वृत्तिओं का निरोध । योग की कई सारी व्याख्याओं को देखते और समझते हुए भाणदेव के अनुसार योग की व्याख्या इस प्रकार है , ''योग यानि परम सत्य की प्राप्ति के लिए होने वाली साधन पद्धति ।'' ''योग यानि आध्यात्म का दर्शन, विज्ञान और कला ।''

1.5 योग के विभिन्न मार्ग (योग मार्ग) :

परम चैतन्य स्वरूप अनंत है और इस चैतन्य स्वरूप के पथ पर चलने वाले यात्री भी भिन्न है । इन सबको व्यक्तित्व अलग–अलग है । इसलिए अनंत को पाने के मार्ग भी अनंत है । अनेक साधन पद्धतियाँ भी अलग है ।

ज्ञानयोग : भाणदेव रचित योगविद्या में ज्ञान योग को इस तरह बताया गया है कि ब्रह्म ही एक मात्र त्रिकालाबाधित सत्य है । दुनिया माया के लिए ही प्रतीत होता है और उसी के कारण वह मिथ्या है । यानि त्याज्य है । ब्रह्म साक्षात्कार जीवन का ध्येय है । जो जगत हमें प्रतित होता है ऐसे जगत को ''नेति नेति'' की पद्धति से इन्कार करते साधक खुद अद्वितीय ब्रह्म स्वरूप से भिन्न जगत का इन्कार, ज्ञानयोग की साधन पद्धति है । विशुद्ध बुद्धि ज्ञानयोग में प्रधान करण है ।

भक्ति योग : भक्ति योग के अंतिम पुरूषार्थ प्रेम को माना गया है । भगवान के सगुण साकार स्वरूप को भक्त अपने निःशेष समर्पण को जीवन का कृतार्थता का अनुभव करते हैं । भक्ति योग में भगवान का नाम स्मरण, भगवान का रूपचिंतन, गुण चिंतन और लीला चिंतन, नाम संकीर्तन, पद संकीर्तन, भगवत् सेवा पूजा यह भक्तियोग बहिरंग साधन है । श्रद्धा, प्रेम और समर्पण भाव भक्तियोग के अंतरंग साधन है । भक्ति कैवल्य मुक्ति को नहीं लेकिन सालोक्य सामीप्य, सारूप्य और सायुज्य मुक्ति को उच्चतर कक्षा में गिनते हैं । भक्ति में बुद्धि को नहीं पर भाव को प्रधान करण माना गया है ।

कर्मयोग : कर्मयोग का लक्ष्य संकल्प मात्र को त्याग कर भगवत् इच्छा से जीने को कहते हैं । कर्मयोग की आरंभिक अवस्था श्रोता, स्मार्त और पौराणिक कर्मो का निष्काम भाव से अनुष्ठान करना है । कर्मयोग में सहज प्राप्त कर्मो को समर्पण भाव से करना कर्मयोग की द्वितीय अवस्था है और अंतिम अवस्था में भागवत् चेतना में जीते हुए भगवत् कार्यो को करता है ।

मंत्रयोग : मंत्र को एक शक्ति माना गया है और उसके जाप द्वारा साधक आंतर जगत में प्रवेश कर सकता है । मंत्र के जाप से ईष्ट की प्राप्ति होती है यह मंत्र योग माना गया है । प्रणव, गायत्री, नवार्णव, महामृत्युंजय आदि कई सार सिद्ध मंत्र है । इसी मंत्रो का अनुष्ठान करके साधक मंत्र के अधिष्ठात देव का संपर्क करते हैं । मंत्र की शक्ति और इष्ट देवता की कृपा में श्रद्धा रखना वह सहायक और अनिवार्य है । मंत्रयोग में कई परंपराओं में अजयाजप को बहुत महत्व दिया गया है । इनके अनुसार श्वासोच्छवास के साथ 'हंसः' शब्द का सतत् जप होता है । यह जप 'सोऽहं' के रूप में परिवर्तित होकर सुषुम्ना नाडी में प्रवेश करता है तब अजयाजप सिद्ध होता है और यही मंत्र योग है । इस अवस्था में मंत्रजाप कठ में से नहीं मगर नाभि में से होता है । जिस में जाप को करना नहीं होता है, वह अपने आप ही होता है ऐसा कहा गया है ।

लय योग : लय योग यानि नाद (आवाज़) । ऐसा कहा गया है कि पूरा विश्व नाद में से उत्पन्न हुआ है । नाद द्वारा हमारी वृत्तिओं का लय बनाकर समाधि की अवस्था को प्राप्त किया जा सकता है । इसी मार्ग को लययोगी लय योग मार्ग समझते हैं । लय योग में ओंमकार के नाद द्वारा साधना करना इसकी प्रथम अवस्था मानी जाती है और लययोग की विकसित अवस्था में आंतरिक नाद का अनुसंधान होता है । आखिर में साधन नाद–बिंदु–कला के मार्ग से शिव जो कला के अधिपति देव है उनको पा लेता है ।

हठ योग : भाणदेव ने योग विद्याा में हठ योग के बारे में बताते हुए कहा है कि मानव शरीर रहस्य से भरा हुआ है । वह चैतन्य तक पहुँचाने वाला पूल बन सकने योग्य है । जो हठ योगी होता है वह अपने शरीर को चैतन्य का उद्‌घाटन करने वाला साधन समझता है । हठ योग के पास शरीर की यह रहस्यपूर्ण स्थिति को समझने का अपना विशिष्ट ज्ञान है । 72 नाड़ियों, पांच प्राण, पांच उपप्राण, सप्तचक्र, कुंडलिनी और उसका जागरण यह हठ योग की मुख्य धारणाएँ है ।

आसन, प्राणायाम और मुद्राओं का अभ्यास हठ योग की साधन पद्धतियाँ है । इसके द्वारा इसकी साधना से साधक की सुषुप्त कुंडलिनी का जागरण होता है और कुंडलिनी सहस्त्रार चन्द्र में पहुँचता है तब साधक समाधि की अवस्था को प्राप्त करता है । इसको प्राणज्य द्वारा मनोजप की पद्धति कहा जाता है ।

राजयोग : पतंजलि के योगसूत्र में 'राजयोग' को अष्टिांगयोग के द्वारा सनातन परंपरा से बताया गया है ।'राज' शब्द का अर्थ यहां प्रधान विशाल या उत्तम है । समाधि की कई सारी अवस्थाएँ है । उन सबके अंत में योगी कैवल्य प्राप्ति करता है । चित्त की वृत्तिओं का निरोध करके उसके द्वारा साधक समाधि की अवस्था प्राप्त करता है । ऐसा कहा गया है कि पतंजलि द्वारा रचित योगसूत्र, राजयोग का प्रमाणभूत ग्रंथ है । राज योग की पद्धति ही अष्टांग योग की साधना है । अष्टांग योग के द्वारा चित्त को वृत्तिओं का निरोध किया जाता है । अष्टांग योग इस प्रकार है – यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि इसी क्रम को अष्टांग योग कहा गया है और यही राजयोग है ।योगमार्गो से राजयोग को एक विशाल मार्ग जैसे माना गया है और वह उत्तम साधन पथ है जहां पर हर कोई चल सकता है ऐसा अर्थ माना गया है । राज योग का खुद का तत्त्व दर्शन, मनो विज्ञान और व्यवस्थित साधन पद्धति है । इसका कारण यही है कि राज योग में जो साधन पद्धति है जिसे अष्टांग योग कहा गया है वह सर्वोत्तम पद्धति है । और इसी कारण योग को विज्ञान भी कहा गया है और इसका कारण राज योग और हठ योग की शास्त्रीय पद्धति को माना गया है ।

पूर्णयोग : पूर्णयोग को श्री अरविंद द्वारा दिया गया नाम है जिसमें सिर्फ साक्षात्कार को ही नहीं लेकिन पूर्ण जीवन के रूपांतर को लक्ष्य माना गया है । यह योग पद्धति बहुत ही विशिष्ट है इसमें साधक पहले चेतना के स्तरो में उर्ध्वगमन करता हे और उर्ध्वचेतना अतिमनस का चेतना के निम्न स्तरों में और अंत में शरीर तक अवतरण होता है और इसी तरह साधक अपने पूरे जीवन का शरीर, प्राण और मन का रूपांतर सिद्ध करता है । तत्वज्ञान और साधन पद्धतियाँ दोनों ही तरीके से यह पूर्णयोग समन्वयात्मक योग है ।

आध्यात्म योग : समन्वयात्मक अभिगम के अभ्यास को अलग–अलग साधन मार्गो के अभ्यास को सरल बनाने के लिए उसे सरल और वैचारिक स्पष्टता के लिए अलग–अलग समझाया और लिखा गया है । यह सारे मार्ग अलग नहीं है । कहीं न कहीं वह एक–दूसरे से मिलते हुए

दिखाई पड़ते हैं । इस साधन मार्ग के जो भी प्रवासी है वह अपने मार्ग में चलने के लिए दूसरे मार्गो की सहायता लेते ही हैं । जैसे–जैसे साधक अपने मार्ग में आगे बढता है वैसे–वैसे वह अपनी साधन पद्धति की विकसित करता दिखाई पड़ता है । जैसे की श्रीमद् भगवत् गीता में कर्मयोग, राजयोग, भक्तियोग और ज्ञानयोग को बताया गया है। तत्व दर्शन और साधन पद्धतिओं का बहुत ही विस्तार से यहाँ दिखाई पड़ता है। सभी योग मार्ग में अनुस्युत एक तत्व है जिसे हम 'आध्यात्म योग' का नाम दे सकें । किसी भी तरह हम भगवत् चेतना में प्रवेश कर सिर्फ यह मुख्य बात है । बाकी सब उसके लिए हैं और इसलिए वह अनुयोग कहा गया ळें सभी साधन के मार्गो में शुरूआत करने के लिए कुछ करना पड़ता है । जैसे कि नाम जप, पूजा, आसन, प्राणायाम आदि । यह क्रियाएँ करने से कुछ अनुभव होता है । इसकी वजह है साधक को कुछ है, उसकी अवस्था में पहुँचता है, वह है जहाँ कुछ भी अनुभ करने का नहीं होता है। जैसे की प्रयोग : कुछ साधना करना । To Do , कर्म संप्रयोग : कुछ अनुभव करना । To Feel – उपासना , संप्रसाद : सिर्फ होने की अवस्था । Fo Be – ज्ञान

क्रियायोग : क्रिया का मतलब है क्रियात्मकता । क्रिया योग यानि ऐसी क्रियाओं का समूह जो हमें आध्यात्मकता की और ले जाएँ । क्रिया योग को हम आध्यात्मकता की और ले जाए । क्रिया योग का स्वरूप ही दर्शाता है की उसमें क्रियात्मकता जुड़ी है । क्रिया योग में कुछ करने का अनुष्ठान है । लेकिन कुछ भी करना यह क्रिया योग नहीं है । क्रिया योग यानि ऐसी क्रियाएँ जो हमें आध्यात्म की और आगे बढाए । भगवान पतंजलि अपने योग सूत्र में क्रिया योग इस तरह बताते हैं ।

तपः स्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि क्रियायोगः ।

तप, स्वाध्याय और ईश्वर प्राणिधान क्रियायोग है । क्रिया योग में अनेक प्रकारों के साधन कर्मो का उल्लेख है जो साधक को आध्यात्म की ओर ले जाता है । इन सारे साधन कर्मो को महर्षि पतंजलि में तीन भागों में बाँटा है । तप, स्वास्थ्य और ईश्वर प्राणिधान । यह तीन विशाल भागों में साधना को वर्गीकृत किया है । तप का साधन मार्ग संकल्पनात्मक और क्रियात्मक है । स्वाध्याय का साधन मार्ग ज्ञानात्मक है और ईश्वर प्राणिधान का साधन मार्ग भावात्मक है । मानव चेतना के तीन पहलू है – क्रिया, भाव और ज्ञान यह तीन पहलू को ध्यान में रखकर ही इन साधन मार्ग को बाँटा गया है ।

1.5.1 हठयोग :

हठयोग में साधक को अपने शरीर के कई सारे नाजुक तंत्रों के साथ काम करना होता है और उससे भी महत्वपूर्ण बात यह है कि यह साधना प्राणमय शरीर की साधना है । इसी कारण साधक को पहले जानना जरूरी है । हठयोग यानि हठाग्रह से करने का योग नहीं है । ''हठ'' शब्द का सही मतलब यह है कि ''ह'' यानि सूर्य और ''ठ'' यानि चन्द्र । कई एसा मानते हैं कि हठयोग यानि शरीर को ध्यान में रखकर की जाने वाली साधना है । मगर यह सही नहीं है । हठयोग साधना की आरंभिक अवस्था है । इसी कारण हठयोग का आरंभ शरीर से होता है लेकिन उसका हेतु समाधि है । यह बात सच है की हठयोग की क्रियाएँ शरीर को निरोगी और सुदृढ बनाने में उपयोगी है । लेकिन हठयोग की साधना का हेतु दीर्घायुष्य की प्राप्ति नहीं है ।

हठयोग को समझते हुए ''सिद्ध–सिद्धांत पद्धति'' में हठयोग को समझाते हुए गोरक्षनाथ ने कहा है कि –

हकारः कीर्तितः सूर्यष्ठकारश्चन्द्र उच्यते ।

सूर्याचन्द्रमसोर्योगात् हठयोगो निगद्यते ।।

- **(योगविद्या (भाग–1), भाणदेव 1.33)**

हकार को सूर्य माना जाता है और ठकार को चन्द्र । और यही सूर्य और चन्द्र का योग – औकय होने के कारण उसे हठयोग कहा जाता है । नाभि में सूर्य का स्थान और मष्तक चन्द्र का स्थान है । नाभि में स्थित प्राण, सुषुम्णा के मार्ग से उर्ध्वगमन करके मष्तक तक पहुँचता है । इस घटना में सूर्य (हकार) और चन्द्र (ठकार) का मिलन होता है ।

हठयोग की व्याख्या करना मुश्किल है । लेकिन उसके स्वरूप को भाणदेव ने अपनी योग विद्याा नामक ग्रंथ में इस तरह से कहा है कि हठयोग यानि आसन, प्राणायाम और मुद्राओं का पद्धति अनुसार अभ्यास करना और कुंडलिनी जागरण द्वारा समाधि अवस्था को प्राप्त करने हेतु किया जाने वाला योग । उसे हठयोग कहते हैं । हठयोग के लक्षणों को देखा जाऐ तो हठयोग एक पद्धति का साधक के लिए सुव्यवस्थित साधन पद्धति है । हठयोग का ध्येय समाधि की अवस्था

की प्राप्ति का है । हठयोग में समाधि की अवस्था में पहुँचने के लिए पहले कुंडलिनी जागरण होना जरूरी है उस अवस्था में आने के बाद ही साधक समाधि तक पहुँच सकता है । हठयोग की साधन पद्धति आसन प्राणायाम और योग मुद्राओं को माना गया है । हठयोग की प्रक्रिया में साधक अपनी साधना को शरीर से प्रारंभ करके प्राणजन्य प्राणजय द्वारा मनोजय द्वारा करता है ।

1.5.2 हठयोग की धारणाएँ :

हमारा शरीर बहुत ही रहस्यात्मक कोश है । मनुष्य शरीर में चेतना के कई सारे स्तर रहते हैं । मनुष्य शरीर उसी चेतना के अलग–अलग स्तरों के साथ जुड़ा हुआ है और यह मनुष्य शरीर प्रत्येक आत्मा का अधिष्ठान है । इसलिए शरीर और चैतन्य को यह संबंध को लिए समझा जाए तो चैतन्य उद्‌घाटन के लिए चाबीरूपी उच्चालन चैतन्यरूपी शरीर बन सकता है ।

हठयोग में शरीर को चैतन्य के उद्‌घाटन का साधन मानता है । माना गया है । हठयोग में पांच कोश मानव शरीर में है ऐसा माना गया है जिसमें अन्नमय कोश, प्राणमय कोश, मनोमय कोश, विज्ञानमय कोश और आनंदमय कोश । यह सारे कोश एक–दूसरे से जुड़े हुए हैं और उसमें एक के बाद एक में कोश धीरे–धीरे सूक्ष्म होता जाता है । हठयोग में साधन किया इस प्रकार दिया गया है कि उसका आरंभ अन्नमय कोश से होता है लेकिन उसकी असर प्राणमय कोश में और आगे बढते हुए सूक्ष्म मनोमय कोश तक होती है । हठयोग की साधन प्रक्रिया को समझने के लिए कई सारे शब्दों को समझना बहुत जरुरी है ।

- **प्राण** : शरीर प्राण के बिना व्यर्थ है , प्राण जीवन शक्ति है । प्राण के शरीर और मनको जोड़ने वाली कड़ी है । प्राण एक ही है लेकिन उसके कार्य के अनुसार पाँच स्वरूप हठयोग में बताए गए हैं ।

प्राण : प्राण का स्थान हमारे हृदय में होता है । जीवन को धारण करना उसका कार्य है और पांच प्राण में यह मुख्य प्राण माना जाता है ।
अपान : नाभि से नीचे के स्थान पर यह होता है । उत्सर्ग उसका कार्य है ।
समान : समान का स्थान नाभि प्रदेश में होता है । इसका कार्य पाचन करना है ।
उदान : इसका स्थान कंठ में हैं और कार्य उन्नयन है ।

व्यान : यह हमारे पूरे शरीर में रहेता है और इसका कार्य परिनयन करना है। हठयोग को प्राण संयम योग माना गया है । इसी कारण हठयोगी के लिए प्राणमय शरीर होना बड़ा महत्वपूर्ण है ।

नाड़ियाँ : मनुष्य के शरीर में नाभि प्रदेश से 72000 नाडियाँ पूरे शरीर में विस्तृत होती है और वह नाड़ी द्वारा शरीर में प्राणों का संचार होता है । नाड़ी के तीन प्रकार है – इडा, पिंगला और सुषुम्णा । यह नाड़ियाँ पृष्ठ वंश में से निकलती है । मनुष्य शरीर में यह तीन नाड़ियों का स्थान अलग–अलग है जिसमें सुषुम्णा नाड़ी बीच में इडा बाई और पिंगला दांई और होती है । इन नाड़ियों में सुषुम्णा ज्यादातर बंध होती है ।

चक्र : हठयोग अनुसार मनुष्य के शरीर में सात चक्र होते हैं । जिसको जागृत करके मनुष्य ध्यान की अवस्था को प्राप्त कर सकता है । मनुष्य शरीर में नीचे से लेकर उपर तक सात चक्र स्थापित है जिसमें मेरूदंड से मष्तक तक इस तरह है । मूलाधारः जो योनि स्थान में होता है । स्वाधिष्ठान :मेढ । मणिपुर : नाभि स्थान । अनाहत : हृदय स्थान । विशुद्ध : कंठ स्थान । आज्ञा : ब्रमर मध्य स्थान । सहस्त्रार : मष्तक स्थान । इस प्रकार सात चक्रो के अपने–अपने आकार, रंग, पंखूडिया, वर्ण, ध्यान की रीत चक्र के जागृत होने के लक्षण आदि का उल्लेख हठयोग में प्राप्त है ।

ग्रंथि और मंडल : ग्रंथिया तीन है । नाभि स्थान में ब्रह्म ग्रंथि, हृदय में विष्णु ग्रंथि और भूमध्य में रूद्र ग्रंथि होती है ।

कुंडलिनी और उसका जागरण : कुंडलिनी बहुत ही रहस्यपूर्ण शक्ति है । हठयोग की जितनी भी फरीयाद है वह कुंडलिनी जागरण के लिए होती है । कुंडलिनी मनुष्य शरीर के सबसे नीचे स्थान पर होती है । ऐसा माना जाता है कि कुंडलिनी सबसे नीचे के मूलाधार चक्र में गूंच की स्थिति में सुषुप्त अवस्था में होती है । योगीक क्रियाओं द्वारा वह जागृत अवस्था में आती है और बाद में सुषुम्णा के मार्ग में चढ़कर वह साधक की चेतना में बड़ा बदलाव होने लगता है । यह कुंडलिनी शक्ति अपने मार्ग में आने वाले चक्रो और ग्रंथिओं को भेदती हुई आगे बढ़ती है । जब वह सहस्त्रार चक्र में पहुँचती है तब साधन समाधि की अवस्था को प्राप्त करता है और यही हठयोग की साधना का लक्ष्य सिद्ध होता है ।

1.5.3 हठयोग की साधन पद्धति :

''हठयोग प्रदीपिका'' अनुसार हठयोग की साधना के चार अंग है । इसमें पहला अंग आसन, दूसरा प्राणायाम, तीसरा मुद्रा और चौथा अंग समाधि माना गया है ।

आसन : हठयोग में आसनों का बहुत महत्व है । कई सारे ग्रंथो में आसनो की व्याख्याएँ दी गयी है । जिसमें पतंजलि के योगसूत्र में हठयोग, प्रदीपिका, घेरंड संहिता यह सारे ग्रंथो में आसनो का वर्णन किया गया है ।

प्राणायाम के कई सारे प्रकार है । हठयोग में प्राणायाम का बहुत महत्व है । हठयोग में प्राणायाम के कुंडलिनी जागरण का मुख्य साधन माना गया है । प्राणायाम में मुख्य स्थान कुंभक है । सहितकुंभक के अभ्यास से केवल कुंभक की सिद्धि होती है और उसीसे कुंडलिनी जागृत होती है । ऐसा कहा गया है कि सहितकुंभक के पर्याप्त, युक्त अभ्यास से केवलकुंभक की सिद्धि प्राप्त होती है । केवलकुंभक हठयोग की सबसे श्रेष्ठ साधना है । केवलकुंभक से ही कुंडलिनी जागृत होती है ।

हठयोग प्रदीपिकाकार के अनुसार–

यावत् केवलसिद्धिः स्यात् सहितं तावद्भ्यसेत् ।
रेचकं पूरकं मुक्त्वा सुखं यद् वायुधारणम् ।। (हठयोग प्रदीपिका 2/72)
कुम्भकात् कुण्डलीबोधः कुण्डलीबोधतो भवेत् ।
अनर्गला सुषुम्ना च हठसिद्धिश्च जायते ।। (हठयोग प्रदीपिका 2/75)

अर्थात् – जब तक केवलकुंभक की सिद्धि प्राप्त न हो तब तक रेचक पुरक युक्त सहितकुंभक का अभ्यास करना चाहिए । उसके बाद रेचक और पूरक के बिना प्राण को सुखपूर्वक रोके रखने को केवलकुंभक कहते हैं । केवल कुंभक से कुंडलिनी का जागरण होता है और कुंडलिनी के जागरण से सुषुम्णा नाड़ी अवरोध के अवरोध नहीं होता है और हठयोग सिद्धि होता है । हठयोग प्रदीपीका में आठ प्रकार के प्राणायाम का वर्णन मिलता है । सूर्यभेदेन ,उज्जायी, सोत्कारी, शोतली, भस्त्रिका, भ्रामरी, मूच्छा, प्लाविनी । ऐसे आठ प्रकार के प्राणायाम है जिसे कुंभक भी कहते हैं । प्राण + आयाम = प्राण के नियंत्रण (प्राणायाम) । प्राणायाम में पहले प्राणों को पकड़ने के लिए सांस के तारों को पकड़ना पड़ता है उसके द्वारा प्राणी को पकड़ने की साधना की जाती है । उसे ही प्राणायाम कहा गया है । उसके अभ्यास से ही कुंभक और केवलकुंभक की सिद्धि प्राप्त होती है । सांसों को वश में करके अपने आप ही प्राण को वश में किया जाता है । जिसे प्राण–निरोध कहते हैं । वहीं प्राणायाम है । प्राणों पर नियंत्रण करते ही केवल कुंभक की स्थिति प्राप्त होती है और उसी क्षण कुंडलिनी जागरण की होती है ।

मुद्रा : मुद्रा में आसन और प्राणयाम दोनों के अंशो को लिया गया है और उसीके कारण मुद्रा का अभ्यास अधिक असरकारक और रंगतरो से भरा है । आसन और प्राणयाम की तरह मुद्रा भी कुंडलिनी जागरण को ही साधना करते हैं जब की प्राणायाम में प्राणों का निरोध किया जाता है । ऐसा कहा गया है की मुद्रा का अभ्यास योग्य गुरू के मार्गदर्शन से ही किया जाना चाहिए । हठ प्रदीपिका में मुद्रा में कहा गया है कि –

तस्मात् सर्वप्रयत्नेन प्रबोधयितुमीश्वरीम् ।
बहमद्वारमुखे सुप्तां मुद्राभ्यासं समाचरेत् ।।
(हठ प्रदीपिका 3/5)

ब्रह्मद्वार (सुषुम्णानाडी) के मुख में सोई हुई ईश्वरी की (कुंडलिनी) सभी प्रयत्नो से उठाने के लिए मुद्राओं का अच्छी तरह से अभ्यास करना चाहिए । हठ प्रदीपिका में दश मुद्राओं को गिना गया है । वह इस प्रकार है ।

महामुद्रा महाबन्धो महावेधश्च खेचरी ।
उडयानं मूलबन्धश्च बन्धो जालंबधभिधः ।।
करणी विपरीताख्या वज्रोली शक्तिचालनम् ।
इदं हि मुद्रादशकं जरामरणनाशनम् ।।
(हठ प्रदीपिका 36–7)

महामुद्रा, महाबंध, महावेध, खेचरी ,उड्डियान बंध, मूलबंध जालघरबंध, विपरीत करणी, वज्रोली और शक्ति चालन यह दश मुद्राएँ वृद्धावस्था और मृत्यु का नाश करती है । इसके पश्चात् ''घ ेरंड संहिता'' में भी मुद्राओं का वर्णन दिया गया है । जिसमें, अश्विनीमुद्रा ,षन्मुखी (योनि) मुद्रा, तडागीमुद्रा, मांडुकी मुद्रा, भुजंगी मुद्रा आदि का वर्णन है ।

समाधि : समाधि हठयोग की साधना का अंतिम अंग है और यह साधना नहीं है लेकिन उसका सिर्फ लक्ष्य और परिणाम है । हठयोग के अनुसार आसन प्राणयाम और मुद्राओं के अभ्यास से कुंडलिनी जागरण होती है और वह कुंडलिनी जब सहस्त्रार चक्र में जाती है तब साधक समाधि की अवस्था को प्राप्त करता है । महाराजा स्वात्माराम के अनुसार ''हठ प्रदिपीका'' के आरंभ में कहा है कि –

केवलं राजयोगाय हठविद्योपदिश्यते । (हठ प्रदीपिका 1–2)

सिर्फ राजयोग के ही लिए हठयोग का उपदेश किया जाता है । हठयोग प्रदिपीका में ''राजयोग'' को समाधि का पर्यायवाचक शब्द माना है । यह बात इस श्लोक के द्वारा प्राप्त होती है ।

राजयोगः समाधिश्च उन्मनी च मनोन्मनी ।

अमरत्वं लयस्तत्वं शून्याशून्यं परं पदम् ।।

अमनस्कं तथाऽद्वैतं निरालम्बं निरञ्जनम् ।

जीवन्मुक्तिश्च सहजा तुर्या चेत्येकवाचकाः ।। (हठ प्रदीपिका .4,3–4)

राजयोग, समाधि, उन्मनी, मनोन्मनी, अमरताए भय, तत्व, शून्य, अशून्य, परंपद, अमनस्क स्थिति, अद्वैत, निरालंब, निरंजन, जिवन्मुक्ति, सहजावस्था, तुरियावस्था यह सारे शब्दों का अर्थ एक ही है । हठयोग प्रदीपिका में समाधि के दो प्रकार का वर्णन किया है – संप्रज्ञात समाधि और असंप्रज्ञात समाधि । संप्रज्ञात में वर्णन किया है कि

सलिले सैन्धवं यद्वत् साम्यं भजति योगतः ।

तथात्ममनसोरैक्यं समाधिरभिधीयते ।। (हठ प्रदीपिका .4,5)

जैसे नमक पानी में मिल जाता है और पानीमय बन जाता है उसी प्रकार आत्मा और मन की एकता को संप्रज्ञात समाधि कहा गया है । असंप्रज्ञात समाधि :

तत्समं च द्वयोरैक्यं जीवात्मपरमात्मनोः ।

प्रनष्ट सर्वसङ्कलपः समाधिः सोऽभिधीयते ।। (हठ प्रदीपिका 4–7)

''जीवात्मा और परमात्मा एक होना और सर्व संकल्प का नाश होना'' उसे असंप्रज्ञात समाधि कहते हैं ।

1.5.4 हठयोग के साधन मार्ग के अंग :

यम–नियम : यम **:** अहिंसा, सत्य (प्रस्तुति में सच्चाई के प्रति प्रतिबद्धता), अस्तेय (चोरी न करना), ब्रह्मचर्य (इंद्रियों पर नियंत्रण) और अपरिग्रह (हासिल करने की इच्छा को बेअसर करना) । नियम **:** शुचिता (षुद्धता), संतोष, तपस (अपनी ऊर्जा का नियंत्रित उपयोग करना), स्वाध्याय और ईश्वरप्रणिधान (आध्यात्मिकता का उत्सव मनाना)।

षट्कर्मः षट्कर्म क्रिया में साधक शोधन कर्म करता है । हठयोग की साधना में यौगिक

शोधकर्म को भी स्थान मिला है । यह साधना को सहायक साधन के रूप में लिया जाता है । प्राणायाम के अभ्यास के लिए घटशोधन होना आवश्यक है और इसी को सिद्ध करने हेतु शोधकर्म महत्वपूर्ण है । घेरण्ड संहिता के अनुसार षट्कर्मः

धौतिर्वस्तिस्तथानेति लौलिकी त्राटकं तथा ।
कपालभातिश्चैतानि षट्कर्माणि समाचरेत् ।।12।। (घेरण्ड संहिता)

अर्थ : धौति, वस्ति, नेति, लौलिकी, त्राटक और कपालभाति इन छः कर्मो का उच्चारण योगी को करना चाहिए । इस के उपरांत योग के अन्य ग्रंथों में धौति, गजकरणी, वस्ति, नौली, कपालभाति और नेति को षटकर्म कहा गया है । यह क्रियाओं को गोपनीयता से ही किया जाना चाहिए । जिनका शरीर कफ पित्त के दोष रहित हो उन्हें ही षट्कर्म करने चाहिए ।

घेरण्ड संहिता में षट्कर्म के अलावा पंचमरा योग के बारे में भी कहा गया है जो योग का साधन माना गया है जिसे योगी को अवश्य करना चाहिए । इसमें नेतियोग करने से श्लेष्म नष्ट होता है । दण्डियोग से हृदय में बंधी हुई गांठ खुलती है । धौतियोग मलसमूह दूर करता है । वस्ति से संपूर्ण अंग पश्चिालित होते हैं और क्षालनयोग से नाड़ियों का क्षालन होता है । इसे पांच क्रिया को पंचामरायोग कहते हैं । नाड़ी शोधन : हठ योग के सभी ग्रंथो में नाड़ी शोधन को महत्वपूर्ण माना गया है । हठ प्रदीपिका में कहा गया है की –

मलाकुलासु नाडीषु मारूतो नैव मध्यगः ।
कथं स्यादुन्मनीभावः कार्यसिद्धिः कथं भवेत् ।। (ह.प्र.2,4)

अर्थ : जब नाड़िया मलयुक्त होती है तब प्राण मध्यनाड़ी (सुषुम्णा) में प्रवेश नहीं करता । इसी कारण उन्मनीभाव कैसे होगा और कार्य सिद्ध कैसे होगी ।

1.6 योग का तत्वज्ञान :

चित्त : योग में चित्त का अर्थ चेतना से भरा हुआ । सांख्य दर्शन के अनुसार पुरूष के चेतन से जड़ प्रकृति में चेतना आती है । प्रकृति के चौबीस तत्वों में से सबसे सूक्ष्म और इसी पुरूष की सबसे नजदीक का तत्व समष्टि के महत् है । इसीको व्यष्टि में बुद्धि कहा गया है और

इसे योग में चित्त कहते हैं । इसी कारण चित्त को प्रकृति को, व्यक्ति में रहने वाले सूक्ष्म और सबसे प्रथम चेतन स्वरूप तत्व मानते हैं । चित्त में जड़ और चेतन दोनों के गुण देखने को मिलते हैं । चित्त व्यक्ति में रहने वाले प्रकृति के तत्वों और पुरूष के बीच की कड़ी रूप है । चित्त सबसे सूक्ष्म है और सबसे चेतनयुक्त और व्यक्ति के अस्तित्व और व्यवहार के नियंत्रण करने वाला सबसे महत्वपूर्ण तत्व है ।

1.6.1 चित्त की पांच वृत्तियाँ :

प्रमाण : जिससे सही ज्ञान होता है उसे प्रमाण वृत्ति कहा गया है । प्रत्यक्ष अनुमान और साप्त यह तीन प्रमाण के प्रकार है ।

विपर्यय : विपर्यय यानि गलत ज्ञान जो है उससे अलग जानना । ऐसे गलत ज्ञान से भी व्यवहार होते हैं ।

विकल्य : मूल कोई वस्तु नहीं उसके बावजूद सिक शब्दों के आधार से ही मन कल्पना से ही कुछ मान लें उसे विकल्प कहते हैं ।

अभिनिवेश : मूढ और विद्वान सभी दिखाई देने वाले जीवन के आग्रह को अभिनिवेश कहते हैं ।

जब चित्त यह वृत्तिओं और क्लेषों में से मुक्त बनता है तब वृत्ति निरोध की अवस्था की स्थिति होती है । इसीको योग की भाषा में समाधि की अवस्था कहा गया है और समाधि के विशेष अभ्यास से केवल्य की प्राप्ति होती है । कैवल्यवस्था की प्राप्ति के लिए ''अष्टांग योग'' की साधना दी गई है ।

1.6.2 अष्टांगयोग मार्ग : योगसूत्र के साधनपाद के 27 सूत्र में राजयोग के साधनपथ के अष्टांग योग का सूत्र दिया है ।

यमनियमासनप्राणायामप्रत्याहारधारणाध्यानसमाधयोऽष्टावङ्गानि ।। (योगसूत्र .2–29)

यम, नियम आसन प्राणायाम प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि यह योग के आठ अंग है । राजयोग के साधन मार्ग के आठ अंग है इसी कारण इन्हें अष्टांगयोग नाम दिया है । अष्टांग योग में इन आठ अंगों की विस्तृत जानकारी आगे हम सूत्रों द्वारा देंगे ।

यम : योगसूत्र में यम पांच बताये गए हैं । जो इस प्रकार है ।

अहिंसासत्यास्तेयब्रह्मचर्यापरिग्रहायमाः ।। (योगसूत्र 2–30)

जिसमें अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह यह पांच यम बताये गए हैं । अहिंसा : यहाँ अहिंसा का स्वरूप देते हुए कहा गया है की किसी भी जीवात्मा को मन, वचन या मन,

वचन या कर्म से कभी भी दुःख नहीं पहुँचे उसे अहिंसा का स्वरूप कहा गया है ।
अहिंसाप्रतिष्ठायां तत्सन्निधौ वैरत्यागः ।। (योगसूत्र .2–35)

सत्य : यहाँ सत्य को जीवन का स्वरूप माना गया है ।

सत्यप्रतिष्ठायां क्रियाकफलाश्रयत्वम् ।। (योगसूत्र .2–36)

अस्तेय : अस्तेय का मतलब है चोरी न करना । जो भी कुछ खुद का ना हो जैसे की धन, अधिकार, विचार, यश, मान यह सब कुछ जो हमारा नहीं है फिर भी हम इन सबकी चोरी करते हैं इसे अस्तेय कहा गया है ।

अस्तेयप्रतिष्ठायां सर्वरत्नोपस्थानम् ।। (योगसूत्र 2–37)

ब्रह्मचर्य : ब्रह्मचर्या की संयम के साथ तुलना की है । कहा गया है की जीवात्मा अपनी सभी इन्द्रियों को आचार और विचारों में संयमित रखे उसे ब्रह्मचर्य कहा जाता है ।, अपरिग्रह : यहाँ अपरिग्रह की संग्रहवृत्तिओं का त्याग करने को कहा गया है ।

नियम : अष्टांगयोग में पांच प्रकारों के नियम है । जिसे योग सूत्र में इस प्रकार दिये हैं –
शौचसंतोषतपःस्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि नियमाः । (यो.सू.2–32)

शौच , संतोष , तप , स्वाध्याय और ईश्वर प्राणि धान यह पांच प्रकार के नियम है जिसे इस प्रकार वर्णन किया है । शौच का मतलब पवित्रता है । योग से आंतरशौच और बाह्यशौच को जरूरी माना गया है । संतोष का मतलब मनुष्य के जीवन में कैसी भी परिस्थिति आए उन सभी परिस्थितिओं में वह प्रसन्न रहे उसे संतोष कहते हैं । तप के अनेक रूप है जैसे की मनुष्य अपना जीवन बड़ी ही संयमता के साथ बिताए । स्वाध्याय का मतलब है हमारे शास्त्रो का अध्ययन करना । ईश्वर प्रणिद्यान जो मनुष्य अपने जीवन को ईश्वर को समर्पित करता है उसे ईश्वर परिद्यान कहा गया है ।

शौचात्स्वाङ्गजुगुप्सा परैरसंसर्गः । (यो.सू.2–40)

शौच से खुद के शरीर के लिए जुगुप्सा होती है और दूसरों के शरीर के संपर्क में आने की अनिच्छा होती है ।

संतोषादनुत्तमः सुखलाभः । (यो.सू.2–42)

संतोष से सुख की प्राप्ति होती है ।

कार्येन्द्रियसिद्धरशुद्धिक्षयात्तपसः । (यो.सू.2–43)

तप करने से अशुद्धियों का विनाश होता है और शरीर तथा इन्द्रियाँ बलवान होती है ।

स्वाध्याय :

स्वाध्यायादिष्टदेवतासंप्रयोगः । (यो.सू.2–44)

स्वाध्याय करने से इष्टदेवताओ की अनुभूति होती है ।

समाधिसिद्धिश्वर प्रणिधानात् । (यो.सू.2–45)

ईश्वर तो प्रणिधान से समाधि सिद्ध होती है ।

आसन : आसन का मतलब बैठना होता है । पतंजलिने अपने योगसूत्र में आसनों के बारे में बताया है । जो इस तरह है :

स्थिरसुखमासनम् । (यो.सू.2–47)

शरीर की सुखपूर्ण स्थिर अवस्था को आसन कहते हैं ।

प्रयत्नशैथिल्यानन्तसमापत्तिभ्याम् । (यो.सू.2–48)

प्रयत्न को कम करने और अनंत पर ध्यान करने से वह (आसन) सिद्ध होता है ।

ततो द्वन्द्वानभिघातः । (यो.सू.2–49)

उससे द्वन्द्वी का आघात् नहीं लगता है । इन सूत्रों में पतंजलि ने आसनों की व्याख्या, आसनो की सिद्धि और आसनों के कल की प्राप्ति के बारे में कहा है । आसनों के द्वारा साधन बडी ही सुखी अवस्था में बैठ पाता है जिससे उसे योगाभ्यास करने में सरलता है । आसनों के निरंतर अभ्यास से साधक में शैथिल्य और अनंत समापति की प्राप्ति होती है । पतंजलि के अनुसार राजयोग और हठयोग के आसनों का स्वरूप अलग है । क्योंकि राजयोग में सिद्धासन, पद्मासन और स्वस्तिकासन जैसे ध्यान उपयोगी आसनों की बताया गया है ।

प्राणायाम : प्राणायाम का मतलब है जो प्राणों पर नियंत्रण रखे । ''प्राण'' यानि ''श्वास'' । प्राण को नियंत्रित करने के लिए जो विशिष्ट तरीकें से पूरक, कुंभक और रेचक की क्रिया की जाती है उसे प्राणयाम कहा गया है । ''प्राण'' शब्द के दो अर्थ है । पहला अर्थ प्राण यानि हवा (वायु) और दूसरा अर्थ है बहुत ही सूक्ष्मजीव । मनुष्य का स्थूल शरीर पंचमहाभूतों से बना है, जिसे अन्नमय कोश कहा गया है । तैतिरीय उपनिषद में ऐसे पांच कोश की चर्चा की गई है । अन्नमयकोश, प्राणमयकोश ,मनोमयकोश, विज्ञानमय कोश और आनंदमयकोश है । प्राणमयकोश पांच प्राण और पांच उपप्राणों से बना है । सूक्ष्म प्राणमय प्रवाह को 'प्राण' शब्द से ही जाना जाता है । इससे मालूम होता है की दोनों 'प्राण' के अर्थ के बीच कोई भेद नहीं है क्योंकि यह सूक्ष्म प्राणशक्ति और सांसों के बीच वायु का बहुत ही गहरा संबंध है । एक सूक्ष्म है और दूसरा स्थूल है । स्थूल वायु ही सूक्ष्म शक्ति का बाहरी स्थूल शरीर का अंग है । प्राणायाम का अर्थ जानने के लिए हमें प्राणायाम को समझना जरूरी है । प्राणायाम = प्राण + आयाम् = प्राणों का नियमन । प्राणायाम का मतलब प्राणों पर नियंत्रण ऐसा अर्थ है । प्राणों को शरीर और चित्त को जोड़ता है । मनुष्य के शरीर में हंमेशा सांस का संचार होता रहता है और वह शरीर के अंदर बसें प्राणों से जुड़ा हुआ है । आगे समझे तो बाह्यश्वास आंतर प्राणों के बाहय का अंत है ऐसा कहा जा सकता है। इसलिए हम बाह्य सांस को पकड़े तो उसके द्वारा हम आंतरप्राणों को बस में कर सकते हैं। यह योगविद्या की रहस्यपूर्ण चाबी है। क्योंकी चित्त की वृत्तियो के चित्त की ही भूमि पर निरोध करना असंभव है। इसलिए प्राणों का निरोध करके इसके द्वारा चित्त का निरोध किया जा सकता है। प्राणायाम के द्वारा साधक पहले अपनी सांसों पर नियंत्रण सिद्ध करता है और सांसो पर नियंत्रण करके प्राणों पर नियंत्रण करता है । और आगे बढते हुए वह प्राणों को नियंत्रित करके अपनी चित्तवृत्तिओं का निरोध करने में सिद्धि प्राप्त करता है ।

हठयोग में शरीर को बहुत ही रहस्यमय माना गया है । यह शरीर पंचमहाभूतों से बना हुआ है और इसमें चैतन्य का स्थान है और यह शरीर आत्मप्राप्ति का साधन बन सकता है । हठयोगी मनुष्य शरीर को एक रहस्य का भंडार मानते हैं । वह मनुष्य के शरीर को तिरस्कार की भावना से नहीं देखते । हठयोगीओ के अनुसार मनुष्य के शरीर में सुषुप्त अवस्था में कुंडलिनी शक्तियाँ है जिसका जागरण होने से साधक के जीवन में अमूल्य क्रांति होगी । कुंडलिनी प्राण स्वरूप है । प्राणायाम के अभ्यास से प्राणस्वरूप सुषुप्त कुंडलिनी जागृत होती है और साधक के समक्ष चेतना के द्वार खूल जाते हैं । प्राणायाम की क्रिया के तीन स्वरूप पूरक , कुंभक और रेचक है । पूरक क्रिया में सांसों को अन्दर किया जाता है । कुंभक के दो प्रकार है आंतरकुंभक जीसमें सांसों को शरीर के अंदर रोका जाता है और बाह्यकुंभक जीसमें पूरे शरीर से सांसों को बाहर

निकालकर कुंभक करना होता है । कुंभक का मतलब है सांसो को रोकना । रेचक में सांस को शरीर से बहार निकालना होता है । इस क्रिया को प्रदीपिक। कार में इस तरह कहा है –

युक्तं युक्तं त्यजेद्वायु युक्तं युक्तं च पूरयेत् ।

युक्तं युक्तं बध्नीयादेवं सिध्धिमवाप्नुयात् ।। (यो.सू.2,18)

उपर्युक्त तरीके से वायु को शरीर के अंदर लेना, उपर्युक्त तरीके से वायु को छोड़ना और उपर्युक्त तरीके से वायु को धारण करना । इस प्रकार से सिध्धि प्राप्त होती है ।

1.6.2.1 योग के ग्रंथो में प्राणायाम

योगसूत्र

तस्मिन् सति श्वासप्रश्वासयोर्गतिविच्छेदः प्राणायामः । (यो.सू.2,47)

आसनो में स्थित होकर सांस और प्रश्वास की गति में विच्छेद हो वही प्राणायाम कहा गया है।

बाह्याभ्यान्तरस्तम्भवृत्तिः देशकालसंख्याभिः परिदृष्टो दीर्घसूक्ष्मः ।। (यो.सू 2,50)

प्राणायाम बाह्य आंतर और स्तंभवृत्ति ऐसे तीन प्रकारों के देश,काल और संख्या से छोटे या बड़े होते हैं ।

बाह्यभ्यान्तरविषयाक्षेपी चतुर्थः ।। (यो.सू.2,51)

बह्य और आंतर विषयों का त्याग करने वाले चौथे प्रकार का प्राणायाम है ।

ततः क्षीयते प्रकाशवरणम् ।। (यो.सू.2,52)

प्राणायाम से प्रकाश के आचरणो का नाश होता है ।

धारणासु च योग्यता मनसः ।। (यो.सू.2,53)

इससे धारणाओं में मन की योग्यता होती है ।

प्राणो देहस्थितोवायुरायामस्तन्निबंधनम् । (गोरक्ष शतकम् 42)

प्राण का मतलब देह में स्थित वायु और आयाम यानि उसका नियमन ।

आसनेन रूजो हन्ति प्राणयामेन पातकम् ।। (गोरक्ष शतकम् 58)

आसनों से रोगों का और प्राणायाम से पाप का नाश होता है ।

प्राणायाम समायोगः प्राणायाम प्रकीर्तितः ।। (वसिष्ठ संहिता 2, 2)

प्राण और अपान के संयोग को प्राणायाम कहते हैं ।

प्राण संयमनं नाम देहे प्राणदि धारणं । (वसिष्ठ संहिता 2, 32)

देह में प्राण आदि वायुओं को धारण करना । उसे प्राण का नियंत्रण यानि प्राणायामक हते हैं।

चले वाते चलं चितं निश्चले निश्चलं भवेत् ।

योगी स्थाणुत्वमाप्नोति ततो वायुं निरोधयेत् ।। (हठप्रदीपिका 2,2)

वायु की गति से चित्त में गति उत्पन्न होती है और वायु निश्चल (स्थिर) होते ही चित्त भी निश्चल (स्थिर) होता है और उससे योगी स्थिरता को प्राप्त करता है । इसलिए वायु का निरोध करना होता है ।

प्राणायामाल्लाघवंचध्यानात्प्रत्यक्षमात्मनि । (घेरण्ड संहिता 1,11)

प्राणायाम से लाधव और ध्यान से आत्मा का प्रत्यक्षीकरण (साक्षात्कार) होता है ।

भगवद्गीता में भी प्राणायाम का वर्णन मिलता है ।

अपाने बुह्वती प्राणं प्राणेऽयानं तथा परे।

प्राणापानगती रूद्ध्वा प्राणायाम परायणाः ।। (श्रीमद् भगवद्गीता 4, 29)

अपरे नियताहाराः प्राणान्प्राणेषु जुह्वती ।

सर्वेऽप्येते यज्ञविदो यज्ञक्षपित कल्मषाः ।। (श्रीमद् भगवद्गीता 4,30)

कई योगी अपान वायु में ही प्राणों का होम करते हैं और कई योगी प्राणवायु में ही अपान का होम करते हैं और प्राण तथा अपान की गति का निरोध करके तभी प्राणायाम सिद्ध होता हैं । और कई योगी जो नियत आहार करते हैं वह प्राण में ही प्राणों का होम करते हैं। यह सब योगी यज्ञो के द्धारा पापो का नाश करते हैं, और यज्ञो के जानकार भी होते हैं।

स्पर्शान्कृत्वा बहिर्बाह्यांश्चक्षुश्चैवान्तरे भ्रुवोः ।

प्राणपानौ समौ कृत्वा नासाभ्यन्तर चारिणौ ।। (श्रीमद् भगवद्गीता 5, 27)

यतेन्द्रियमनोबुद्धिर्मुनिर्मोक्षपरायणः ।

विगतेच्छाभयक्रोधो यः सदा मुक्त एव सः ।। (श्रीमद् भगवद्गीता 5, 28)

बाहर के विषयों का चिंतन छोड़ के उसको त्याग के, नेत्रों की दृष्टि भ्रुकुटि के बीच में स्थिर रखकर और नासिका में चल रहे प्राण और अपान वायु को सम (स्थिर) करके जिसने इन्द्रियाँ, मन और बुद्धि को जीत लिया है । ऐसे मोक्षपरायण मुनि ही इच्छा, भय और क्रोध से मुक्त होता है । भगवद्गीता एक भक्ति ग्रंथ है । इसमें भगवत् स्वरूप के ध्यान की विधि बताते हुए आरंभ में प्राणायामक रने की सलाह दी गई है । जिसमें प्राणायाम के अभ्यास से चित्त की एकरूपता के द्वारा भगवत्स्वरूप का ध्यान कर सकें । नरदजी ने द्रुवजी को साधना सिखाते समय कहा कि –

प्राणायामेन त्रिवृत्ता प्राणेन्द्रियमनोमलम् ।

शनैर्व्युदस्याभिध्यायेन्मनसा गुरूणा गुरूम् ।। (श्रीमद् भगवद्गीता 4 – 8 – 44)

रेचक पूरक और कुंभक ऐसे तीन अंगों से युक्त प्राणायाम से प्राण, इन्द्रिय और मन में रहने वाले मलों को धैर्य से दूर करके पूरे मन से परमगुरू भगवान का ध्यान करना । कपिल भगवान देवहूत को कहते हैं –

प्राणायामैर्दहेदोषन्धारणाभि श्च किल्बिषान् ।

प्रत्याहारेण संसर्गान्ध्यानेनानीश्वरान् गुणान् ।। (श्रीमद् भगवद्गीता 3–28–11)

प्राणायाम से वात्तपित्त आदि दोषों की धारणा से पापों को, प्रत्याहार से विषयों से जुड़े संबंधों का और ध्यान से भगवद् विमुख करने वाले रागद्वेषों जैसे दुर्गुण दूर होते हैं । भगवान श्रीकृष्ण उद्धव को साधना की विधि बताते हुए कहते हैं कि –

प्राणस्य शोधयेन्मार्ग पूरक कुंभक रेचकैः।

विपर्ययेणापि शनैरेभ्यसेन्निर्जितेन्द्रियः ।। (भगवद्गीता 11–14, 33)

पूरक, कुंभक और रेचक तथा रेचक, कुंभक और पूरक इस तरह प्राणायाम यानि अनुलोम–विलोम द्वारा धीरे–धीरे नाड़ीशोधन की प्रक्रिया करते हैं ।

प्राण के पांच प्रकार और पांच उपप्राणों के प्रकार को योग के साहित्यों में बताया गया है ।

क्रम	पांच प्राणों के नाम	कर्म	स्थान
1.	प्राण	श्वासोच्छवास्	नाभि से ह्रदय तक
2.	अपान	उत्सर्ग	नाभि से गुदा तक
3.	समान	पाचन और पोषण	नाभि
4.	व्यान	परिनयन	समग्र शरीर
5.	उदान	उन्नयन	कंठ

गोरक्ष संहिता में इसे श्लोक के रूप में इस तरह बताया गया है –

हदि प्राणों वसेन्नित्यमपानो गुह्यमण्डले ।
समानो नाभिदेशे तु उदानः कण्ठमध्यगः ।
व्यानो व्यापी शरीरे तु प्रधान पश्चवायवः ।। (गोरक्ष संहिता 30)

क्रम	पांच उपप्राणों के नाम	कर्म
1.	नाग	डकार
2.	कर्म	स्कोचन
3.	कृकर	क्षुधा–तृष्णा
4.	देवदत्त	निद्रा, तंद्रा
5.	धनंजय	फूलना

इस प्रकार पांच प्राण तथा पांच उपप्राणों को योग में बताया गया है ।

1.6.2.2 प्राणायाम का वर्गीकरण : – हठप्रदीपिका में प्राणायाम के तीन प्रकार कहे है । प्राणायामस्त्रिधां प्रोक्तोरेचक पूरक कुंभकैः । प्राणायाम में पूरक, रेचक तथा कुंभक द्वारा प्राणों पर संयम रखा जाता है ।

योग सूत्र में प्राणायाम के चार प्रकारों का वर्णन किया गया है ।

1.	बह्य	बाह्य कुंभक जिसे रेचक के अंत में कुंभक किया जाता है ।
2.	आभ्यांतरः	आंतरकुंभक जो पूरक के अंत कुंभक किया जाता है ।
3.	स्तंभवृत्तिः	पूरक या रेचक की अवस्था के दौरान यानि आरंभ, अंत या बीच में कुंभक हो जाए उसे स्तंभवृत्ति कहा जाता है ।
4.	चतुर्थः	कुंभक, रेचक और पूरक की अपेक्ष के बिना ही कुंभक कहीं भी हो जाए ऐसी

		अवस्था ।

हठप्रदीपिका में अष्टविद्या कुंभक को प्राणायाम के लिए शब्द दिया है ।

सूर्यभदेनमुज्जायी सीत्कारी शीली तथा ।

भस्त्रिका भ्रामरी मूर्च्छा प्लाविनीत्यष्टकुम्भकाः ।। (हठप्रदीपिका 2,44)

सूर्यभेदन, उज्जायी, सीत्कारी, शीतली, भस्त्रिका, भ्रामरी, मूर्च्छा और प्लाविनी ऐसे आठ प्रकार के प्राणायाम है – वसिष्ठ संहिता में प्राणायाम की कई सारी पद्धतियों को बताया गया है । सगर्भ (मंत्र केसाथ), अगर्भ (मंत्र के साथ) , सहितकुंभक (रेचक–पूरक के साथ) केवल कुंभक (रेचक–पूरक के बिना) , बाह्य कुंभक, अंतः कुंभक ,उत्तम, मध्यम, अधम ,उत्तम, मध्यम और अधम को कई ग्रंथो में परिणाम के आधार पर तीन प्रकार दिये हैं और कई ग्रंथो में मात्रा के आधार पर दिये ह ।

अधर्म च धनोधर्मः कंपो भवति मध्यमे ।

उत्तिष्ठत्युमेयोगी बद्धपद्मासनो मुहुः ।। (गो.श. 49)

अधम प्राणायाम में पसीना बहुत होता है । मध्यम में कंपन और उत्तम प्राणायाम में बद्ध पद्मासनस्थ योगी उन्नयन का अनुभव करता है ।

प्रत्याहार : प्रत्याहार को बहिरंगयोग माना गया है । लेकिन वह अंतरंगयोग का प्रवेश द्वार है । प्रत्याहार द्वारा इन्द्रियों पर नियंत्रण सिद्ध होता है । जब तक साधक का मन बाह्य जगत के विषयों में होतो है, तब तक वह आध्यात्म की ओर नहीं बढ सकता । हमारे चित्त का विषयों के साथ संपर्क इन्द्रियों द्वारा होता है । इन्द्रिय विषयों से जुड़े होती है । जब यह क्रिया विपरीत होती है यानि की इन्द्रिय विषय से मुक्त होकर चित्तस्वरूपाकार हो जाए तब प्रत्याहार होता है और तब साधक धरणा, ध्यान और समाधि के मार्ग में आगे बढता है । प्राणायाम और जप आदि के अभ्यास द्वारा साधक अपनी वृत्तिओं को अंदर की तरफ मोड़ता है और जब वृत्तियों का यह

अभ्यास होता है तब प्रत्याहार विकसित होता है और आंतर आनंद और शांति की अनुभूति होती है और प्रत्याहार सिद्ध होता है ।

प्रत्याहार के विषय में योगसूत्र में इस प्रकार कहा है –

स्वस्वविषयासम्प्रयोगे चितस्वरूपानुकार इवेन्द्रियाणां प्रत्याहारः ।। (यो.सू.2–54)

इन्द्रिया अपने–अपने विषयों में पीछे हटकर चित्तस्वरूप आकार को धारण करती है वह प्रत्याहार है ।

ततः परमा वश्यतेन्द्रियाणाम् ।। (यो.सू.2–55)

प्रत्याहार से इन्द्रियों पर नियंत्रण सिद्ध होता है ।

धारणाः चित्त की सामान्य अवस्था में चित्त हंमेशा अलग–अलग विषयों को बदलता रहता है । धारणा में साधक का खुद के विषय की तरफ एकाग्रता को संभाल सकता है और अन्य विषयो के प्रत्ययन को छोड़ने में सक्षम बनता है । धारणा के पांच प्रकार है , बाह्य जिस में इष्ट देव की मूर्ति या चित्र की धारणा की जाती है । स्वशरीर जिस में नासाग्र, भूमध्य आदि पर की जाती है । चक्र जीस में अनाहत, आज्ञा आदि चक्रो पर की जाती है । मनोमय जिस में इष्ट देव के स्वरूप को मन में धारणा की जाती है । नादश्रवण जिस में ज्योतिदर्शन आदि की अनुभूति की जाती है ।

देशबन्धश्चित्तस्य धारणा ।। (यो.सू.3–1)

धारणा में साधक कोई एक विषय पर अपनी एकाग्रता रखता है।

ध्यान : जब साधक अन्य विषयों पर ध्यान न रखकर अपने इष्ट विषय पर ध्यान केन्द्रित करता है और ध्यान के लिए सिद्ध होता है तो इस अवस्था को ध्यान कहते हैं ।

तत्र प्रत्येकतानता ध्यानम् ।। (यो.सू.3–2)

ध्यान के लिए पसंद किये गए विषय पर एकतानता को ध्यान कहते हैं ।

समाधि : समाधि में प्रवेश करने के लिए जो साधक अपने ध्यान अवस्था में अन्य विषयशून्यता और स्वविषय एकाग्रता सिद्ध करता है परंतु इस अवस्था में स्वकेन्द्रीय चेतना का अभाव नहीं है

और स्वकेन्द्रीय चेतना ही विषय और विषयों के द्वैत का कारण हे । जब यह स्वकेन्द्री चेतना विलीन हो जाती है तब साधक का समाधि में प्रवेश होता है । यह इस श्लोक में भी कहा है – ''स्वरूपशून्यमिय'' । महर्षि पतंजलि ने समाधि तक पहुँचने के लिए बहुत ही गहराई से बताया है । यम–नियम के पालन से साधक का जीवन परिशुद्ध बनता है और चित्त के क्लेश दुर्बल बनते हैं । आसन और प्राणायाम के अभ्यास से साधक का शरीर अभ्यास के लिए तैयार होता है और प्राण के प्रवाह समक्षवस्था में आता है तथा प्रकाश के आगे आने वाले आवरण दूर होते हैं । इसके बाद प्रत्याहार के अभ्यास से इन्द्रियों पर विजय प्राप्त होता है । इन पांच अंगो के योग में बर्हिरंग कहा गया है । बर्हिरंग योग के अभ्यास से साधक अंतरंग योग के लिए तैयार होता है । इसके बाद धारणा में साधक एक विषय पर अपनी एकाग्रता केन्द्रित करता है और ध्यान में प्रत्यय की एकतानता की सिद्धी प्राप्त करता है और यही सिद्धी समाधि है । योग सूत्र में समाधि की अवस्था नहीं लेकिन ''कैवल्य'' को अंतिम अवस्था माना गया है ।

1.7 साधन मार्ग के स्वरूपों का वर्णन :

1.7.1 तप – तप शब्द ताप के उपर से आया है । ताप यानि तपना । जैसे की सवर्ण को जीतना हम अग्नि में जलाते हैं उतना ही उसमें से अशुद्ध धातु जल जाता है और सोना उतना ही शुद्ध हो जाता है । इसी प्रकार से साधक का शरीर और चित्त को शुद्ध करने की कई प्रकार की साधनात्मक है । तप शब्द तप धातु पर से बना है । साधक के शरीर और मन को शुद्ध करने की साधन पद्धति को तप कहते हैं । तप को कई सारी साधनाओं से किया जाता है जिसमें साधक जो परम सत्य की प्राप्ति के लिए पूरा जीवन समर्पित करता है और सत्य की प्राप्ति के लिए उस प्रकार का जीवन जीता है । उसमें उसे मानसिक और शारीरिक कष्ट भी सहने पड़ते हैं । यह तप का ही एक स्वरूप है । साधक नियमबद्ध जीवन शैली को स्वीकार करता है और उसमें साधक निम्न प्रकृति में रहने वाली अपनी वासनाएँ, मर्यादाएँ, ग्रंथियाँ और कल्पना आदि से मुक्ति होने के लिए अनेक प्रकारों के अनुष्ठान करता है । अनुष्ठान एक प्रकार का तप ही है । संकल्प भी तप का ही स्वरूप है । व्रत, उपवास, स्नान, तीर्थयात्रा यह तप के बाह्य स्वरूप है । तप का अर्थ शरीर को कष्ट देकर कठोर तप करना यह नहीं है । ऐसे तप को तामसिक तप कहते हैं । जैसे की बरसों तक खड़े रहना, हाथ सूख जाए तब तक उसे और उठाके रखना आदि प्रकारो के कष्टों को सहकर तप करना ये तप नहीं है ।

प्राणयामः परं तपः ।

प्राणायाम को परम तप माना गया है ।

तच्च चित्तप्रसादनं बाध्मानमनेनासेव्यमिति मन्यते ।

जो तप चित्त की प्रसन्नता का कारणभूत हो और शरीर तथा इन्द्रियों के लिए बाधारूप न हो वही सेव्य है, और नहीं ।

तप के तीन प्रकार है । वाचिक तप जिस में सत्य, प्रिय और हितकर वाणी को वाचिक तप कहा गया है । शारीरिक तप जिस में सात्विक आहार, विहार, उपवास, व्रत, इन्द्रियों पर संयम आदि तप शारीरिक तप है । मानसिक तप मौन, समता, भावशुद्धि, मनोनिग्रह, चित्त की प्रसन्नता आदि मानसिक तप है । पतंजलि ने अपने योग सूत्र में तप के बारे में कहा है '' काये न्द्रियसिद्धिरशुद्धिक्षयात्तपसः '' । तप करने से अशुद्धी का क्षय होता है और शरीर और इन्द्रियों को सिद्धी प्राप्त होती है ।

1.7.2 स्वाध्याय : स्वाध्याय का मतलब है स्व का अध्ययन । स्व के अध्ययन का मतलब है खुद को समझना । स्वाध्याय का हेतु समझ का विकास है उसका संबंध व्यक्तित्व के ज्ञानात्मक के साथ जुड़ा है । अध्यात्म पथ पर चलने वाला साधक खुद को विद्वान बनाने के लिए नहीं निकला लेकिन उसका अर्थ ये भी नहीं की उसे अनपढ़ रहना चाहिए । अध्यात्म का ज्ञान होना वह जरूरी है और उसे उपयोगी भी है । इसी कारण एक साधक के लिए स्वाध्याय जरूरी है । स्वाध्याय के तीन प्रकार है । पहला शास्त्रों का विधिवत् अध्ययन । दूसरा जो भी विषयों का अध्ययन साधक करता है उस पर चिंतन मनन करना और तीसरा जो भी हमारे शास्त्रों में प्रणव, गायत्री आदि मंत्र है इसका जाप करना और वैदिक सूक्तो या अन्य स्त्रोतों का पठन करना । पतंजलि ने अपने योग सूत्र में स्वाध्याय के बारे में कहा है । – ''स्वाध्यायादिष्टदेवतासंप्रयोगः'' । (यो.सू.2,44) स्वाध्याय से इष्टदेवो की प्राप्ति होती है ।

1.7.3 ईश्वर प्राणिधान : ईश्वर प्रविधान यानि भक्तियोग । इसे योग में मूल्यवान साधन माना गया है । इससे मालूम होता है कि योग में भक्ति का विरोध नहीं है । पतंजलि ने भी योगसूत्र में ईश्वर प्राणिधान द्वारा भक्ति को स्थान दिया है । योग सूत्र में ईश्वर प्राणिधान '' ईश्वर प्राणिधानाद्वा ।। '' (यो.सू.1,23) ईश्वर प्राणिधान की समाधि प्राप्त होती है । साधक अपना पूरा जीवन ईश्वर को समर्पित कर दे ंतो उसे समाधि प्राप्त करने जितना लाभ होता है । कई जगह पर ईश्वर प्राणधान का मतलब ईश्वरचिंतन भी है । कहा गया है कि समर्पण से भी आगे जा सकता है । क्योंकि वह खुदका आपसी अहंकारी व्यक्तित्व ईश्वर को अर्पण करता है तब

आपसी अहंकार चेतना का नाश हो जाता है और साधक की आध्यात्मिक विकास की कोई सीमा नहीं रहती । वह अमर्यादित हो जाती है । साधक अपने आपको जब ईश्वर को समर्पित करता है तब ईश्वर की क्रिया आध्यात्म जगत के सर्वोच्च रहस्य है । भोजवृत्ति जो योगसूत्र की टीका है जिसमें ईश्वर प्राणिधान का प्रमाण मिलता है ।

स भगवानीश्वरः प्रसन्नः सन् अन्तरायरूपान् ।

क्लेशान् परिहृत्य समाधि सम्बोधयति ।। (भोजवृत्ति–2,45)

वह भगवान – ईश्वर प्रसन्न होकर अंतरायरूप क्लेशों का हरन करके साधक को समाधि लाभ प्रदान करते हैं ।

तपः –

स्वाध्यायेश्वर प्राणिधानानि क्रियायोगः । (यो.सू.2,1) ।

तप, स्वाध्याय और ईश्वरप्राणिधान क्रियायोग है ।

शौचसंतोषतपः स्वाध्यायेश्वर प्राणिधानानि नियमाः । (यो.सू. 2,32)

शौच, संतोष, तप, स्वाध्याय और ईश्वर प्राणिधान यह पांच नियम है ।

समाधि सिद्धिरीश्वर प्राणिधानात् । (यो.सू.2,45)

ईश्वर प्राणिधान से समाधि सिद्ध होती है ।

1.7.4 आध्यात्मयोग की कक्षाएँ : आध्यात्मयोग की तीन कक्षाएँ है । क्रियात्मक to do यह कक्षा क्रियात्मक है । इस कक्षा में शरीर और इन्द्रिय का कार्य करती है । शास्त्रों में भूः संज्ञा दी गई है । इसमें यज्ञ, पूजा, क्रियाओं को प्रथम कक्षा माना है । वैदिक परंपरा के अनुसार इन क्रियाओं को क्रियाकांड कहा जाता है । जो प्रथम कांड है । अनुभवात्मक to feel आध्यात्मिक पथ में अनुभवात्मक को द्वितीय कक्षा माना गया है । जिसमें साधक आंतरिक अनुभूति करता है और क्रियात्मकता कम होती जाती है । शास्त्रीय संज्ञा में इसे भूवः कहते हैं । वैदिक परंपरा के अनुसार इसे उपासना कांड कहते हैं । इस कक्षा में अंतःकरण का बड़ा महत्व है । इसे कक्षा के दौरान जपादि कर्म सूक्ष्म और गहरें बनते हैं । होना to be स्वः । इस कक्षा में कुछ करना या अनुभव करना नहीं है । इस कक्षा में होना मुख्य है । इसकी शास्त्रीय कक्षा स्वः है और वैदिक परंपरा के अनुसार इसे ज्ञानकांड कहा जाता है । इन तीनों कक्षाओं को शास्त्रों की परिभाषा में 'प्रयोग', 'संप्रयो' और 'संप्रसाद' कहा गया है । क्रियायोग में कई सारे साधना मार्गो की चर्चा की गई है । प्राचीन काल से तीन साधनों के सर्वमान्य स्वरूप से परंपरागत चलते आ रहे हैं जो

हमारे सनातन परंपरा की एक महत्वपूर्ण साधना है । प्राणायाम , प्रणवोंपासना, गायत्री जाप । इन तीन साधना से ही हमारी त्रिकाल संध्या का निर्माण होता है । इन तीनों के समन्वय से साधनापथ बन सकता है और वह सात्विक, सर्वमान्य, सौम्य और प्रमाणभूत है ।

यहां जो तीन साधना के पथ दिये है उसमें प्रथम प्राणायाम है जिसकी चर्चा आगे हो चुकी है । दूसरे पथ की चर्चा करें तो वह है प्रणवोपासना जिसमें वेद और उपनिषदों सर्वत्र प्रणव की महिमा कही गई है । प्रणव यानि ''ऊँ कार'' । यह एक ब्रह्मवाचक मंत्र है जिसे शब्दब्रह्म, तारक मंत्र आदि की संज्ञा दी गई है । साधन प्रणव मंत्र के नाद से और अर्थ चिंतन द्वारा मूल तत्व तक पहुँच सकता है । पतंजलि ने भी अपने योग सूत्र में प्रणव की बात कही है। तस्य वाचकः प्रणवः । (यो.सू. 1,27) , ईश्वर वाचक प्रणव (ऊँ) है । तज्जपस्तदर्थ भावनम् । (यो.सू. 1,28) । उसके जाप और अर्थ का चिंतन करना । प्रणव नाद ''ऊँ'' ओम का उच्चारण कई सारे महापुरूषों ने अपने–अपने अनुभवों से वर्णित किया है । प्रणव की साढे तीन मात्रा है 'अ्', 'उ' और 'म' यह तीन मात्र की अवस्था स्थूल, सूक्ष्म और कारण का प्रतीक है । इसमें अर्धमात्र को तुरीय अवस्था माना जाता है ।

सनातन परंपरा में क्रियायोग का विचार तो यहाँ तीसरी साधना पद्धति है वह गायत्री जाप है । गायत्री जाप में भी प्रणव मंत्र जैसा ही महात्मय है और एक महामंत्र है । गायत्री को वेदमाता कहा गया है । सनातन परंपरा में सभी गायत्री मंत्र का स्वीकार करते है । ''गायत्री'' एक छंद का भी नाम है । गायत्री मंत्र में परम तत्व के ध्यान, प्रार्थना और स्तुति है । गायत्री मंत्र के ऋषि विश्वामित्र और देव सर्वत्र है । सर्वत्र का अर्थ है यहां सूर्य में स्थित नारायण परम तत्व है ं

गायत्री मंत्र के जाप करने के तीन प्रकार है – वाचिक, उपांशु और मानसिक । जिसमें ध्यानमंत्र में उसका पाठ करना होता है और उस देवता का ध्यान करना होता है । दूसरे प्रकार में व्याहृति उच्चारण जिसमें ऊँ भू भूर्वः स्वः का उच्चारण करना होता है जिसमें भूः, भुवः और स्वः व्याहृतया है । इन तीन व्याहृतियों द्वारा बताया गया है कि इसमें सहज की तीन भूमिका साधना के तीन पडाव और अस्तित्व के तीन स्वरूपों का प्रमाण है । इसके बाद तीसरे प्रकार में गायत्री मंत्र का जाप शुरू करना होता है। ऊँ तत्सवितर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात् ।। ऐसे सर्वत्रदेव के उत्तम तेज से हमें ध्यान करते हैं जो हमारी बुद्धि को तेजस्वी बनाते हैं । गायत्री मंत्र के जाप के अंत में शीर्षमंत्र द्वारा समापन करके अंत में परिधान मंत्र का पाठ किया जाना चाहिए ।

आचार्यो ने योग के बारे में अपने–अपने अर्थ बताते हुए योग के कई सारे प्रकार और अर्थो को समझाया है जिसे हमें योग के अलग–अलग प्रकारों के बारे में जानकारी प्राप्त होती है । योग में कहा गया है की जब साधन रूपी योग का विचार किया जाता है तब शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक और आध्यात्मिक दृष्टिकोण से विवेचन करने पर साधकों के बीच अभिरूचि और सामर्थ्य में अन्तर भेद योग साधना में होता है । इसी कारण सबके लिए नर की नारायण के साथ एकता कराने वाले साधन एक नहीं हो सकते । इसी कारण प्रत्येक साधक को अपने साधन का निश्चय खुद करके उससे काम लेना होगा । इसी कारण परम कल्याण के साधन रूपी योग के कई प्रकार है और हमारे शास्त्रों में उनको योग ही नाम दिया गया है।

योग के विभाग : ''योग'' का अर्थ शास्त्रों में दिया गया है और उसके प्रकार भी दिए गए हैं जो इस प्रकार है : क्रिया योग, समाधि योग, मन्त्र योग, जप योग, लय योग प्राचीन (मार्कण्डेयी), हठ योग , हठ योग (मत्स्येन्द्रनाथी), कुलकुण्डलिनी योग, अकुलकुण्डलिनी योग, वाग्योग, शब्द योग, अस्यर्श योग, साहस योग , शून्य योग, श्रद्धा योग, भक्ति योग, प्रेम योग , प्रयति (शरणागति) योग, निष्काम कर्मयोग, अभ्यास योग, ध्यान योग, संख्य योग, ज्ञान योग, राज योग, राजाधिराज योग , महा योग, पूर्ण योग । आदि योगों का विस्तृत वर्णन पतंजलि आदि के ग्रंथो में मिलता है । श्रीमद् भगवद्गीता में भी योगो की संख्या बतायी गयी है । इसमें अलग–अलग योगो का उल्लेख किया गया है उसके प्रकार है । समत्वयोग (श्रीमद् भगवद्गीता 2। 48,6। 27–33), ज्ञानयोग (श्रीमद् भगवद्गीता 3। 3,13। 24, 6।1) ,कर्मयोग (श्रीमद् भगवद्गीता 3 । 3, 5 । 2,13 । 24), दैवयज्ञयोग (श्रीमद् भगवद्गीता 4 । 25) , आत्मसंयमयोग (श्रीमद् भगवद्गीता 4 । 27), योगयज्ञ (श्रीमद् भगवद्गीता 4 । 28), ब्रह्मयोग (श्रीमद् भगवद्गीता 5 । 21), सन्यासयोग (श्रीमद् भगवद्गीता 6 । 2,7 । 28), दुःखसंयोग वियोग योगं (श्रीमद् भगवद्गीता 6 । 23), अभ्यासयोग (श्रीमद् भगवद्गीता 8 । 8,12 । 7), ऐश्वरयोग (श्रीमद् भगवद्गीता 7 । 5,11 । 4–7) , नित्याभियोग (7 । 22), सततयोग (10 । 7,12 । 7), बुद्धियोग (श्रीमद् भगवद्गीता 10 । 10,18 । 57), आत्मयोग((श्रीमद् भगवद्गीता 10 । 18, 11 । 47), भक्तियोग(श्रीमद् भगवद्गीता 14 । 26), ध्यानयोग (श्रीमद् भगवद्गीता 18 । 52)

1.8 पंतजलि योग दर्शन व पतंजलि जीवनी :

पतंजलि योग दर्शन के रचयिता महर्षि पतंजलि काशी के रहने वाले ईसा पूर्व दूसरी शताब्दी में उनके होने का अनुमान लगाया जाता है । वैसे तो इनका जन्म गोनार्ध में हुआ था जो गोण्डा उत्तरप्रदेश स्थित है लेकिन वह काशी में आकर नागकूप में रहने लगे । महर्षि पतंजलि पाणिनी जो व्याकरणाचार्य उनके शिष्य थे । काशीवासी महर्षि पतंजलि को शेषनाग का अवतार मानते हैं और आज भी श्रावण कृष्ण पू. नागपंचमी को नाग के चित्र को बांटा जाता है । महर्षि पतंजलि ने योगसूत्र की रचना की है जो हिन्दुओं के छः दर्शनों में से एक है । भारतीय साहित्य में पतंजलि ने कई सारे ग्रंथ लिखे हैं । उसमें से मुख्य 3 ग्रंथ है । योगसूत्र , अष्टाध्यायी पर भाष्य और आयुर्वेद पर ग्रंथ लिखा है । पतंजलि ने पाणिनि के अष्टाध्यायी पर टीका लिखी जिसे महाभाष्य का नाम दिया गया जिसका काल 200 ई.पू. माना जाता है । पतंजलि ने इस ग्रंथ की रचना करके पाणिनी के व्याकरण की प्रामाणिकता का स्वरूप माना और उस पर मोहर लगा दी थी । महाभाष्य व्याकरण ग्रंथ होने के साथ–साथ तत्कालीन समाज का विश्वकोश भी है ।

कुछ विद्वान महर्षि पतंजलि को एक महान चिकित्सक मानते हैं और इन्हें ही 'चरक संहिता' का प्रणेता मानते हैं । महर्षि पतंजलि रसायण विद्या के विशिष्ट आचार्य थे उन्होनें ही अभ्रक, विद्वंस, धातुयोग और लौहशास्त्र प्रदान किया है । महर्षि पतंजलि संभवतः पुष्यमित्र शुंग (195.142 ई.पू.) के शासनकाल में थे । राजा भोज ने महर्षि पतंजलि को तन के साथ–साथ मन का चिकित्सक भी माना है ।

सुकवि रामचन्द्रजी दिक्षीत जो द्रविड़ देश के थे । उनके काव्य ग्रंथ 'पतंजलि चरित' में उन्होंने पतंजलि के चरित्र के संबंध में कुछ नए तथ्य की संभावनाएं बताई है । उनके अनुसार शंकराचार्य के दादा गुरू आचार्य गौड़पाद पतंजलि के शिष्य थे किन्तु यह बात तथ्यों से पुष्ट नहीं होती है । ऐसा माना जाता है कि महर्षि पतंजलि एक महान नर्तक थे वे भारतीय नर्तकी द्वारा उनके संरक्षक के रूप में पूजनीय है । यहां पर संदेह उत्पन्न होता है कि यह वहीं पतंजलि है जिन्होने दिलीप योगसूत्र, अष्टाध्यायी और अष्टाध्यायी के आधार बनाकर संस्कृत व्याकरण महाभाष्य प्रस्तुत की । आयुर्वेद कई औषधियों के ऊपर भी इनकी रचनाएं हैं । अत : ऐसा माना जाता है कि अलग–अलग पतंजलि एक प्रसिद्ध पहचान को प्राप्त करने हेतु अपने

नाम और कार्य के इससे जोड़ते चले गए, जो किसी महत्वपूर्ण व्यक्ति के संघर्ष के संकलन से प्राप्त किया गया था ।

व्याकरण महाभाष्य का रचनाकाल ईसा पूर्व द्वितीय शतक, चरक संहिता का संस्करण काल ईसवी द्वितीय शतक और योगसूत्र का इसवीं तृतीय व चतुर्थ शतक है । इस स्थिति में संदर्भित तीनो व चतुर्थ शतक है । इस स्थिति में संदर्भित तीनो ग्रंथों का कर्ता एक ही व्यक्ति है, यह मत असंगत लगता है । परन्तु नाम सादृश्य के कारण उपर्युक्त ग्रंथो का एक ही पतंजलिकर्ता थे । यह मत रूढ हो गया । भिन्न शतको में तीन स्वतंत्र पतंजलि हुए ऐसा इतिहास के नूतन शोधको का मत है ।

योगसूत्रकार पतंजलि का काल निर्धारित करने के लिए अंतरंग सबूत उपलब्ध नहिं है । केवल तर्क संमत बहिरंग सामग्री से उपलब्ध आधारो पर योगसूत्र और उनके रचयिता पतंजलि का काल ईंसवी तीसरा या चौथा शतक निश्चित किया गया है । योगसूत्रकार के माता–पिता तथा गुरू और शिष्य परम्परा आदि के संबंध में जानकारी उपलब्ध नहीं है ।

योगशास्त्र के आद्य प्रवर्तक हिरण्यगर्भ माने जाते हैं । हिरण्यगर्भ से प्रारंभ हुई योगशास्त्र परम्परा गुरू और शिष्य के उपदेश द्वारा पतंजलि तक अखंड चलती रही। पतंजलि ने उस परम्परा को सूत्रबद्ध करके संग्रहित किया । अतः योगशास्त्र की परम्परा अन्य शास्त्रो के समान अति प्राचीनकाल से जारी है । इस बात की पुष्टि करने वाले अनेक प्रमाण प्राचीन वेद वाग्मय में मिलते हैं । योगसूत्र के पहले ही सूत्र से यह स्पष्ट है । यह पहला सूत्र है 'अथ योगानुशासनम् ।' इस सूत्र में अनुशासन शब्द का अर्थ है 'बाद में किया हुआ उपदेश'।

कालनिर्धारण किया जाए तो पतंजलि के समय निर्धारण के संबंध में पुष्प मित्र कण्व वंश के संस्थापक ब्राह्मण राजा के अश्वमेघ यज्ञों की घटना को लिया जा सकता है। यह घटना ई.पू. द्वितीय शताब्दि का मध्यकाल अथवा 150 ई.पूर्व माना जा सकता है। पतंजलि की एकमात्र रचना महाभाष्य है जो उनकी कीर्ति को अमर बनाने के लिए पर्याप्त है। दर्शनशास्त्र में शंकराचार्य को जो स्थान 'शारीरिक भाष्य' के कारण प्राप्त है, वहीं स्थान पतंजलि को महाभाष्य के कारण व्याकरण शास्त्र में प्राप्त है। पतंजलि ने इस ग्रंथ की रचना कर पाणिनी के व्याकरण की प्रामाणिकता पर अंतिम मोहर लगा दी है।

पतंजलि के बारे में योग की जर्नल में भी कई सारी बातें कही गयी है जिसमें – योग शिक्षक और प्युपिल ओफ के.बी.एस. लेंगर काफी बुसाई ने पतंजलि के जीवन चरित्र के बारे में एक जर्नल में कहा है कि –''पतंजलि, नृत्य के संरक्षक संत ।''

''पहली उपलब्धि जो अपने माता–पिता की कहानियों को देखते हुए आश्चर्यचकित नहीं है । वास्तव में एक महान नर्तक के रूप में उनकी पहचान है । आज तक भारत में शास्त्रीय परंपराओं में काम करने वाले नर्तक उसे आमंत्रित करते हैं और उसका सम्मान करते हैं । इसलिए पतंजलि प्रभावी रूप से नृत्य के संरक्षक संत है ।''– कोकी बसिया यह कोकी के लेखन का एक लंबा उदाहरण है : पतंजलि के बारे में लगभग सब कुछ अज्ञात है । कोकी बसिया योग शिक्षक और बीकें एक अयंगर के शिष्य द्वारा लिखित पतंजलि की जीवनी कुछ इस प्रकार है । ''पतंजलि के बारे में लगभग सबकुछ अज्ञात है । यहां तक कि उनके सबसे बुनियादी जीवनी विवरण भी विवादित है और जो थोड़ा ज्ञात है, वह मिथक में निहित है ।''

पतंजलि के जन्म और जीवन के लिए प्रस्तावित तिथियां एक सहस्त्राब्दी से भिन्न होती है । कुछ अधिकारियों का सुझाव है कि वह 4 वीं शताब्दी ईसा पूर्व में रहते थे और फले–फूलें थे । जबकि अन्य लोग जोर देकर कहते हैं की उन्हें 6 वीं शताब्दी सी.ई. में रहना चाहिए था । संभावित तिथियों में इस व्यापक विचलन का एक कारण परंपरा है उस समय आम (समकालीन ग्रीक समाज में भी मौजूद है और अभी भी ईतिहासकारों के लिए अंर्तहिन समस्या का कारण बनता है।) किसी को पहले से ही एक महान प्रतिपादक के रूप में स्वीकार करना थोड़ा मुश्कील है । परस्पर विरोधी साक्ष्य के सामने अब जो सबसे अच्छा हो सकता है वह है पतंजलि के जन्म और मृत्यु की संभावित तारीखों के लिए आम सहमति के साथ आना । यह देखते हुए कि पतंजलि के सबसे व्यापक रूप से पहचाने जाने वाले कार्य, योग सूत्र में ज्ञान को एक स्वर की श्रृंखला के माध्यम से प्रस्तुत किया जाता है । चौथी और दूसरी शताब्दी के बीच कहीं उसके लिए एक तारीख बी. सांई की अत्यधिक संभावना बन जाती है। यह उस अवधि से अधिक था कि कामोदीपक शैली ने न केवल व्यापक स्वीकृति प्राप्त की, बल्कि शायद इसकी सबसे बड़ी शैलीगत चोटी तक पहुँच गयी । पतंजलि का कार्य व्यापक रूप से प्रस्तुतिकरण की सूत्र विधि का सबसे अच्छा उदाहरण माना जाता है । एक सदी दें या लें। इसीलिए लगभग 250 ईसा पूर्व में माना जाता है।

भगवान पतंजलि को नाग अनंत का अवतार माना जाता है । जिसका नाम अंतहीन है। और जो कि आदिशेष का दूसरा रूप है । भगवान विष्णु सृष्टि की शुरूआत से पहले आदिशेष में विराजमान है । स्वयं पतंजलि को सामान्य रूप से आधे मानव और आधे सर्प के रूप में चित्रित किया गया है । मानव धड़ के साथ सर्व शक्तिशाली सर्प के कोइल से उभर रहा है, जो सृष्टि के क्षण में जागरण कर रहा है । सर्प उस रचनात्मक ऊर्जा का प्रतिक है । पतंजलि के हाथ 'नमस्ते' के पारंपरिक भारतीय अभिवादन में हैं – जिसे ''अंजलि'' या भेंट कहा जाता है । चूंकि ''पाटा'' का अर्थ है 'पतंजलि' जिसका मतलब है ''अनुग्रह'' (या कृपा पूर्ण) के रूप में अभिवादन किया जा सकता है जो स्वर्ग से गिरता है । स्वामी को आम तौर पर ध्यान मुद्रा में दर्शाया जाता है । उनके मुड़े हुए हाथ आशीर्वाद और अभिवादन दोनों है जिन्होंने उनसे योग और इसके सत्य की तलाश करने के लिए संपर्क किया है । उनका अभिवादन उनकी कृपा से उनकी अनुयायीओं या भक्तों को सुकून देता है । यह उन्हें विश्वास दिलाता है कि उन अनुयायी या भक्तों को अंततः फल मिलेगा । पतंजलि के वास्तव में दो नहीं बल्कि चार हाथ है । उनके सामने वाले दोनों हाथ अंजलि का आशीर्वाद पैदा करते हैं जबकि बाकी दो उठते हैं । उत्थित हाथों से ही एक में शंख होता है, जो शंख ध्वनि की ऊर्जा का प्रतिक है । ये अपने शिष्यों को अभ्यास करने के लिए कहता है और दुनिया के आसन्न अंत की घोषणा करता है क्योंकि वे अब तक उन्हें जानते हैं । उनके अन्य उत्थान हाथ में काकडा या डिस्कस है जो समय और उसके कारण और प्रभाव के संबंधित कानून दोनों को बदल देता है ।

जब यह निर्धारित करने की बात आती है कि पतंजलि ने क्या किया , तो अनिश्चितताएँ बढ़ जाती है । उनकी पहली उपलब्धि जो अपने माता–पिता की कहानियों को देखते हुए आश्चर्यचकित नहीं है । वास्तव में एक महान नर्तक के रूप में उनकी पहचान है । आज तक भारत में शास्त्रीय परंपराओं में काम करने वाले नर्तक उसे आमंत्रित करते हैं और उसका सम्मान करते हैं । इसलिए पतंजलि प्रभावी रूप से नृत्य के संरक्षक संत है ।

''मौलिकता के सवाल के रूप में हालांकि पतंजलि (कम से कम, जैसा कि उनके योगसूत्र में दर्शाया गया है) स्पष्ट रूप से हिरण्यगर्भ और कपिला की वंशावली है, वह महत्वपूर्ण मामलो में उनसे अलग है । ऐसा इसलिए हो सकता था क्योंकि उसके पास वास्तव में खुद के विचार थे । लेकिन योग दृढ़ता से श्रमण परंपरा से जुड़ा था, ये वन भटकने वाले और साधकों के लिए भटकते थे । इन्होंने विचारो की स्वतंत्रता को प्रोत्साहित किया । इसलिए पतंजलि व्यापक रूप

से भिन्न तरीको वाली व्यवस्था में व्यवस्था लाने की कोशिश कर रहे है। कुछ लोग कहते हैं कि ''सभी'' वह एक साथ लाए थे और उन ग्रंथो के विविध शरीर को संक्षेप में प्रस्तुत किया था जिनमें से अधिकांश अब खो गए हैं । जो कुछ भी उनकी प्रेरणा थी, पतंजलि ने कई विचारों को प्रतिपादित किया है जो कि सांख्य और योग में मुख्य धारा के नहीं थे ।''

पतंजलि (देवनागरी पतंजलि) योग सूत्रों का संकलन है । एक प्रमुख कार्य जिसमें मन और चेतना को दार्शनिक पहलुओं पर काम है और पाणिनी की अष्टाध्यायी में एक प्रमुख भाष्य के लेखक भी है । हालांकि कई विद्वान इन दोनों ग्रंथो का विचार नहीं करते हैं कि यह एक ही व्यक्ति द्वारा लिखा गया है । हाल के दशकों में राजयोग के अभ्यास और इसके दार्शनिक आधार के बारे में उपदेशों के लिए योगसूत्र दुनियाभर में काफी लोकप्रिय हो गया है । पारंपारिक हिन्दु धर्म में ''योग'' में आंतरिक चिंतन ध्यान की एक कठोर प्रणालि, नैतिकता, तत्व मीमांसा और एक सामान्य आत्मा, भगवान या ब्राह्मण के प्रति समर्पण शामिल है । दुनिया को योग सिखाने के लिए उन्हें कहा गया है (पैट) स्वर्ग से एक महिला की खुली हथेलियों (नजाली) में, इसलिए उनका नाम पतंजलि है।

1.8.1 एक अवतार के रूप में पतंजलि : यह दावा किया जाता है कि पतंजलि को सदिश के अवतार के रूप में जाना जाता है । जो पहला अहंकार–विस्तार–विस्तार है । विष्णु का संस्कार । वह संस्कार, विष्णु की अभिव्यक्ति उनकी प्रधान ऊर्जाएँ और विद्या तथा कथित विदूर, विष्णु की चौगुनी अभिव्यक्ति का हिस्सा है । इस प्रकार पतंजलि को योग के अहंकार की रक्षा करने वाले भगवान के अवतार के रूप में माना जा सकता है । पतंजलि महर्षि की पृष्ठभूमि के बारे में उनके जीवन के बहुत सारे विवाद है । लेकिन उनके समकालीन तिरूमूलर के कार्य निम्नलिखित विवरण के पर्याप्त प्रमाण है । प्राचीनकालीन कौतुवम वर्णन करता है कि शिव और काली का नृत्य देखने और 108 रहस्यवादीकरणों को करने के लिए चिंदबरम् के पास थिलाई में देवताओं के साथ पतंजलि और व्याघ्रपद कैसे एकत्रित हुए, जिसने नाट्य योग प्रणाली की नींव रखी । पतंजलि का जन्म अत्रि (सबसे पहले) में हुआ था।(सप्त ऋषियों में से एक) और उनकी पत्नी अनसूया को दक्षिण कैलाश में अब उस जगह की तिरूमूर्ति पहाड़ियों के रूप में कहा जाता है जो भारत के कोयम्बटुर से 100 किमी. दूर स्थित है । वह 18 सिद्धियों में से एक था । उनका बहुत सार था कि वे अष्टांग योग के स्वामी थे । जो राजयोग या कुंडलिनी योग या तंत्र योग से संबंधित है । अनसूया को उनकी शुद्धता की कड़ी परीक्षा से

गुजरना पड़ा था । जब त्रिमूर्ति (ब्रह्मा, विष्णु, शिवा) स्वयं भिक्षु के रूप में आए और उनसे निर्वाण भिक्षा मांगी । उसने खुद को अपने बच्चो के रूप में स्वीकार करके अपनी परीक्षा में सफल हुई और उन्हें नग्न अवस्था में खिलाया । उसे वरदान मिला जहाँ सभी 3 मूर्तियाँ उनके लिए पैदा होगी । वे थे सोमस्कंदन या पतंजलि दत्तात्रेय दुखसा । उनकी एक पुत्री भी थी जिसका नाम अरूंधति था । उसकी शादी सप्तर्षियों में से एक वशिष्ठ से हुई थी ।

एक योग जर्नल में रिचर्ड रोसेन ने पतंजलि कौन थे उसके बारे में लिखा है – रिचर्ड रोसेन कहते हैं कि आप पर्याप्त योग कक्षाएँ हमें और आप अंततः योग सूत्र से अपने शिक्षकों में से एक को सुनेंगे जो कि शास्त्रीय या राज (शाही) योग की गाईडबुक है । कम से कम 1,700 साल पहले लिखा गया यह 195 सूत्र या ज्ञान के शब्दो से बना है । लेकिन क्या आप पतंजलि के बारे में कुछ जानते हैं जिस व्यक्ति ने इन छंदो का संकलन किया है ।

सच तो यह है कि ऋषि के रहते हुए कोई भी वास्तव में बहुत कुछ नहीं जानता । कुछ चिकित्सकों का मानना है कि वह दूसरी शताब्दी ईसा पूर्व के आसपास रहते थे और उन्होंने आयुर्वेद (चिकित्सा की प्राचीन भारतीय प्रणाली) और व्याकरण पर भी महत्वपूर्ण रचनाएँ लिखी, जिसमें उन्हें पुनर्जागरण का कुछ काम मिला । लेकिन भाषा के अपने विश्लेषण और सूत्र के शिक्षण के आधार पर आधुनिक विद्वान पतंजलि को दूसरी या तीसरी शताब्दी ईसवी सन् में स्थान देते हैं और चिकित्सा निबंधों और व्याकरण का वर्णन विभिन्न अन्य पतंजलिओ के लिए करते हैं ।

दुनिया के आध्यात्मिक नायकों के बारे में कई कहानियों की तरह पतंजलि के जन्म की कहानी ने पौराणिक आयामों को ग्रहण किया है । एक संस्करण का संबंध है कि पृथ्वी पर योग सिखाने के लिए वह स्वर्ग से एक छोटे से साँप के रूप के रूप में अपनी कुंवारी माँ जो एक शक्तिशाली योगीनी है, के रूप में अपनी कुँवारी माँ के अंजलि के रूप में जाना जाता है । यहाँ उन्हें रेमिनेडर (शेषा) या ऐंडलेस (अनंत) नामक हजार सिर वाले नागराजा का अवतार माना जाता है, जिनके कोल्स भगवान विष्णु का समर्थन करने के लिए कहा जाता है । देखा जाए तो पतंजलि के बारे में कई सारी कथाएँ मिलती है जिसमें से आर्ट ओफ लिविंग में गुरू श्री श्री रवि शंकरजी ने कुछ इस तरह बताया है । जिसमें उन्होंने पतंजलि योग सूत्र कैसे शुरू होते हैं एक पौराणिक कथा से ।

सभी ऋषिमुनियोंने भगवान विष्णु के पास जाकर कहाँ ''भगवान, आपने धन्वतरि का रूप लेकर शारीरिक रोगों के उपचार हेतु आयुर्वेद दिया, लेकिन पृथ्वी पर लोग काम, क्रोध और मन की वासनाओं से अभी तक पीड़ित है तो इससे मुक्ति का क्या तरीका है ? अधिकतर लोग शारीरिक ही नहीं मानसिक और भावनात्मक स्तर पर भी विकारों से दुखी होते हैं ।''

भगवान विष्णु आदिशेष सर्प की शैया पर लेटे हुए थे, सहस्त्र मुख वाले आदिशेष सर्प, जागरूकता का प्रतिक है । उन्होंने ऋषिमुनियों की प्रार्थना सुनकर, जागरूकता स्वरूप आदिशेष को महर्षि पतंजलि के रूप में पृथ्वी पर भेज दिया । इस तरह योग का ज्ञान प्रदान करने हेतु पृथ्वी पर महर्षि पतंजलि ने अवतार लिया ।

पृथ्वी पर अवतरण के बाद महर्षि पतंजलि ने नियम बनाया कि जब तक ज्ञान चर्चा हेतु एक साथ 1000 शिष्य इकट्ठे नहीं होते वह योग सूत्रों का प्रतिपादन नहिं करेंगे । ऐसे में विंध्य पर्वत के दक्षिण में 1000 शिष्य इकट्ठे हुए । महर्षि की एक और शर्त थी, उन्होंने कहा कि उनके और शिष्यों के बीच एक पर्दा रहेगा जब तक ज्ञान का सत्र समाप्त न हो । कभी भी उस पर्दे को नहीं उठाया जाएगा और न ही कक्ष से बाहर जाया जाएगा ।

महर्षि पतंजलि ने 1000 शिष्यों को परदे के पीछे रहकर बिना एक शब्द बोलें ज्ञान देना आरंभ किया । यह एक अलौकिक दृश्य था शिष्य अभूतपूर्व ऊर्जा का संचार महसूस कर रहे थे पतंजलि बिना कुछ कहें ज्ञान का संपादन कर रहे थे । इसी दौरान शर्त की अवहेलना हुई । एक शिष्य को लघुशंका के लिए कहा छोड़ना पड़ा उसने सोचा की वह चुपचाप जाएगा और वापिस आ जाएगा । एक और शिष्य को जिज्ञासा हुई की महर्षि पर्दे के पीछे क्या कर रहे हैं ? उसने उत्सुकतावश पर्दा उठा दिया । परदे के उठाते ही वहाँ उपस्थित शिष्य भस्म हो गए । यह देख पतंजलि अत्यंत दुखी हुए । उसी समय लघुशंका से लौटे शिष्य ने कक्ष में प्रवेश किया और बिना अनुमति के बाहर जाने के लिए क्षमा याचना की ।

करूणावश महर्षि पतंजलि ने बचे हुए सभी योग सूत्र उस शिष्य को दो दिए पर साथ ही उसे नियम की अवहेलना के लिए ब्रह्मराक्षस बन जाने का श्राप दिया । उन्होंने कहा कि जब तक तुम ये ज्ञान किसी एक विद्यार्थी को नहिं देते तब तक तुम ब्रह्मराक्षस बने रहेंगे । ऐसा कहकर पतंजलि अंतरध्यान हो गए । इसका अर्थ ये है कि जब कोई ज्ञानी व्यक्ति गलत करता है तो वह अधिक खतरनाक है । वह ब्रह्मराक्षस जैसी अवस्था है। ऐसे ही जब कोई ज्ञानी व्यक्ति गलत करता है तो वह अबोध के अपराध करने से अधिक खतरनाक है ।

इसके बाद शिष्य ब्रह्मराक्षस बनकर पेड़ पर लटक गया और उस रास्ते से निकलने वाले राहगीरो से वह एक प्रश्न पूछता, जो भी उसका सही उत्तर नहीं देता, वह उसे खा जाता । कुछ हजार वर्षो तक ऐसा ही चलता रहा और इस ब्रह्मराक्षस को कोई भी सक्षम विद्यार्थी नहीं मिल पाया । ऐसी स्थिति देखकर करूणा स्वरूप महर्षि पतंजलि ही तब एक विद्यार्थी बनकर ब्रह्मराक्षस ने वही ज्ञान पेड़ के ऊपर बिठाकर पतंजलि को दिया जिसे उन्होंने ताड़ के पत्तें पर लिखा । ब्रह्म राक्षस रात में ही ज्ञान दिया करता था, पतंजलि अपने आपको खरोच कर खून निकालते और पत्तो पर लिखते । ऐसा सात दिन तक चलता रहा । अंत में पतंजलि थक गए । उन्होंने लिखित पत्तें को एक कपड़े में रखा और स्नान करने चले गए । जब वह वापिस लौटे तो उन्होंने देखा कि एक बकरी उनके अधिकतर पत्तों को खा गई है । पतंजलि बचे हुए पत्तों को समेट कर चले गए ।

पुराण हमें कथा कहते हैं और उसका अर्थ निकालने के लिए हम पर छोड़ देते हैं । इस कहानी का अर्थ बहुत गहरा है । जैसे कि – पर्दे को उठाते ही सारे शिष्य भस्म क्यों हो गए ? महर्षि पतंजलि ने बिना कुछ बोले ज्ञान का सम्पादन कैसे किया , पर्दे का क्या महत्व है , एक शिष्य को क्यों माफ कर दिया गया , बकरी का क्या अभिप्राय है , इस कहानी से आप क्या समझते हैं ।

महर्षि पतंजलि को अपने ज्ञान के लिए परम्परा इस प्रकार प्रशंसा करती है – ''मैं विशिष्ट पतंजलि को झुककर अपने दोनों हाथों को जोड़ते हुए प्रणाम करता हूँ जिन्होंने योग के माध्यम से मन, भाषण के माध्यम से व्याकरण और औषधि के माध्यम से शरीर की अशुद्धताओ को हटाया ।'' राजा भोज ने भी महर्षि पतंजलि की सराहना की है ।

योगेन चित्तस्य पदेन वाचां मलं शरीरस्य च वैद्यकेन ।

योऽपाकरोत्तम् प्रवरं मुनीनांम् पतंजलिं प्राञ्जलिरानतोऽस्मि ।।

अर्थात् – मन की चित्तवृत्तियों को योग से, वाणी को व्याकरण से और शरीर की अशुद्धियों को आयुर्वेद द्वारा शुद्ध करने वाले मुनियों में सर्वश्रेष्ठ महर्षि पतञ्जलि (पतंजलि) को मैं दोनो हाथ जोड़कर नमन करता हूँ ।

1.8.2 महर्षि पतंजलि के जन्म से जुड़ी कहानियाँ

एक कहानी के अनुसार पतंजलि ऋषि अत्री और उनकी पत्नि अनसूया के पुत्र थे । महर्षि पतंजलि को अनंत का अवतार माना जाता है जो पवित्र नाग जिस पर भगवान विष्णु योग निद्रा में विश्राम करते हैं ।

एक कहानी के अनुसार भगवान विष्णु को शिव का नृत्य देखने के लिए उत्साहित देखकर, आदिशेष नृत्य सीखना चाहता था । ताकि वह अपने भगवान को खुश कर सके । इसके द्वारा प्रभावित होकर भगवान विष्णु ने आदिशेष को आशीर्वाद दिया और कहा की भगवान शिव उनकी भक्ति के लिए उन्हें आशीर्वाद देंगे । वह जन्म लेंगे ताकि वह मानव जाति को आशीर्वाद दे सकें और नृत्य कला का नेतृत्व कर सकें ।

इस समय गोनिका नाम की एक सुप्रसिद्ध महिला जो योग के लिए समर्पित थी । एक योग्य पुत्र के लिए हाथों में पानी लेकर प्रार्थना कर रही थी । जब उसने एक छोटा साँप उसके हाथ में घूमता देखा । वह साँप एक मानव स्वरूप में बदल गया । वह सर्व आदिशेष था जिसने महर्षि पतंजलि के रूप में अवतरण लिया था ।

इस कहानी के अनुसार पतंजलि कैसे नृत्य को जानते थे यह बात ज्ञात होती है ।

1.8.3 **महर्षि पंतजलि कृत योग दर्शन** : महर्षि पतंजलि कृत योगदर्शन एक महत्वपूर्ण और उपयोगी शास्त्र है । पतंजलि ने योग को अपनी पुस्तक योगसूत्र में जीवन के तीन पड़ावों (चरणों) के बारे में बताया है योगदर्शन में योग के सिद्धांतो को बड़ी सरलता से निरूपण किया गया है । इसके कई भाषा में अनुवाद किया गया है । योगदर्शन में योगसूत्र दिये गए है, जिसके चार पाद में दिया गया है ।

समाधिपाद : समाधिपाद योगदर्शन का पहला पाद है जिसमें कुल 51 सूत्र है । इसमें योग के लक्षण एवं स्वरूप और प्राप्ति के बारे में कहा गया है । इसके बाद चित्त की वृत्तिओं के पांच भेद और लक्षण दिये है । इसके बाद समाधिका विषय की चर्चा करके उसके लक्षण बताए गए हैं । आगे इस पाद में सूत्र 23 से 27 तक ईश्वर प्राणिधान और फलका कथन दिया गया है । आगे बढ़ते हुए सूत्र 30 से 40 तक चित्त के विक्षेपो का, उनके नाशका तथा मन की स्थिति के लिये अलग–अलग उपायों का वर्णन दिया गया है । सूत्र 41 से 51 में समाधि के फल सहित अवान्तर भेदो का वर्णन दिया गया है ।

साधनपाद : साधनपाद में कुल 55 सूत्र दिये गऐ हैं । जिसमें 1 से 4 सूत्र में क्रिया योग के स्वरूप का और फल का निरूपण दिया है । सूत्र 3 से 5 में अविद्यादि के पांच कलेशो का वर्णन किया है जिसमें इन पांच क्लेशो को सभी दुःखो का कारण कहा गया है क्योंकि इसी के रहते हुए मानवी जो भी कर्म करता है वह संस्कार स्वरूप अन्तःकरण में इकट्ठे होते है इसी संस्कारो के समुदाय को कर्माशय कहते हैं । और इसी के कारण कलेश जब तक रहते हैं तब तक सभी जीवों को उनका फल भूगतने के लिए नाना प्रकार के योनियों में जन्म और मृत्यु के चक्रव्यूह में घुमना पड़ता है और पाप कर्म का फल भुगतने के लिए नरक की यातना से निकलना पड़ता है । आगे के सूत्र 10 से 17 तक कलेशों के नाश का उपाय और उसकी आवश्यकता का प्रतिपादन दिया गया है । सूत्र 18 से 22 में दृश्य और द्रष्टाा के स्वरूप का तथा दृश्य की सार्थकता का कथन किया गया है । सूत्र 23 से 27 में प्रकृत्ति और पुरुष के अविद्याकृत संयोग का स्वरूप और उसके नाश के उपायभूत अविचल विवेक ज्ञान का निरूपण दिया है । सूत्र 28 से 55 में विवेक ज्ञान की प्राप्ति के लिए अष्टांग योग के अनुष्ठान की आवश्यकता अष्टांग योग के आठो अंगो के नाम और उनमें से पांच बाहय अंगो के लक्षण और उनके विभिन्न फलो की चर्चा की गयी है ।

विभूतिपाद : विभूतिपाद में कुल 55 सूत्र दिए गऐ हैं जिसमें प्रथम 1 से 3 में धारणा, ध्यान और समाधि के अंगो के स्वरूप की चर्चा की गयी है । सूत्र 4 से 8 में निर्बीज–समाधि के बहिर साधनरूप संयम का निरूपण किया गया है । सूत्र 9 से 12 में चित्त के परिणमों का विषय बताया है । सूत्र 13 से 15 तक प्रकृति जनित समस्त पदार्थो के परिणाम का निरूपण किया गया है । सूत्र 16 से 48 में फल सहित अलग–अलग संयमो का वर्णन है । सूत्र 47 से 55 तक विवेक ज्ञान का और उसके फलस्वरूप कैवल्य का वर्णन किया गया है । **कैवल्य पाद :** कैवल्य पाद में कुल 34 सूत्र दिये गये हैं । सूत्र 1 से 5 में सिद्धि प्राप्ति के पांच हेतुओं का वर्णन किया है और जात्यन्तर परिणाम के विषय के बारे में है । सूत्र 6–7 में ध्यानजनित परिणाम की संस्कार शून्यता (निराशयता) का प्रतिपादन और योगी के कर्मो की महिमा का वर्णन है । सूत्र 8 से 11 में साधारण मनुष्यों की कर्मफल–प्राप्ति के प्रकार का वर्णन दिया है । सूत्र 12 से 24 तक अपने सिद्धान्त का युक्तिपूर्ण प्रतिपादन करके सूत्र 25 से लेकर 34 तक विवेकज्ञान के विषय की चर्चा और धर्ममेघ समाधि तथा कैवल्य अवस्था की चर्चा की गयी है ।

इसी प्रकार कई योगी पतंजलि योग दर्शन की टीका करते हुए उन्होंने कहा है की इस शास्त्र में प्रकृति के चौबीस भेद और आत्मा और ईश्वर इस प्रकार कुल छब्बीस तत्व माने गए हैं । उनमें प्रकृति तो जड़ और परिणामशील है अर्थात् निरन्तर परिवर्तन होना उसका धर्म है तथा मुक्त पुरुष और ईश्वर ये दोनों नित्य, चेतन, स्वप्रकाश और अपरिणामी है । प्रकृति में बंधा पुरूष अल्पज्ञ, सुख–दुःखो का भोक्ता, अच्छी–बुरी योनियो में जन्म लेने वाला और देशकालातीत होते हुए भी एक देशी सा माना गया है ।

इस अध्याय में शोधार्थी ने योगशास्त्र के बारे में समझाते हुए योग की उत्पत्ति, योग के प्रकार तथा दर्शनशास्त्र में योग का स्थान बताते हुए चारों वेदों के बारे में समझाने की कोशिश की है । योग का उद्‌देश्य मानवीय जीवन को मोक्ष प्राप्ति, कैवल्य प्राप्ति तथा ईश्वरीय शक्ति का साक्षात्कार करना और आत्मा को परमात्मा का मिलाप करके समाधि की और ले जाना है । इस अध्याय में योग को दर्शाते हुए यम, नियम, प्राणायाम, प्रत्याहा, धारणा, ध्यान और समाधि को समझाने का प्रयास किया है । हठ योग को समझाते हुए योग के तत्वज्ञान को समझाने का प्रयास किया है । कई सारे महान ग्रंथों में योग के बारे में कहा गया है जिससे योग कई सदियों से हमारी भारतीय संस्कृति में है यह बताने का प्रयास इस अध्याय में किया गया है जिससे भविष्य में योग को और सरलता से समझा जा सकता है ।